व्याख्यानसार-संग्रह पुस्तकमाला का आठवां पुष्प

श्री मज्जैनाचार्य—

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज

के

व्याख्यानों में से

ब्रह्मचर्य व्रत।

सम्पादक—
श्री जैन हितेच्छु श्रावक-मंडल की तरफ से
पं० शंकरप्रसाद दीक्षित

प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन
पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का
हितेच्छु श्रावक-मंडल, रतलाम (मालवा)

वीर सम्वत्	अर्द्ध मूल्य	विक्रम सम्वत्
२४७१	।)॥	२००२

प्रकाशक—
श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक मण्डल
रतलाम (मालवा)

प्रथमावृत्ति २०००
द्वितीयावृत्ति १०००

मुद्रक—
चिम्मनसिंह लोढ़ा
श्री महावीर प्रेस, ब्यावर

॥ ॐ ॥

नयानगर (ब्यावर) निवासी

श्रीमान सेठ

पन्नालालजी पूनमचन्दजी काकरिया

की

ओर से

अर्द्ध मूल्य में

भेंट ।

दो शब्द।



शासन देव की किंचित् कृपादृष्टि व प्रताप से, मण्डल अपने ध्येय की ओर गति करता हुआ व्याख्यानसार संग्रह पुस्तकमाला का यह आठवाँ पुष्प दूसरी बार पाठकों की सेवा में रखने को समर्थ हो सका है। इससे पूर्व प्रकाशित सात पुस्तकों का जनता ने खूब स्वागत किया। कई पुस्तकों के तो थोड़े ही समय में दो दो तीन २ सस्करण निकालने पड़े। इस पुस्तक का पहला सस्करण श्रीमान् सेठ हजारीमलजी बहादुरमलजी बांठिया भीनासर निवासी की ओर से अर्द्ध मूल्य में वितरण किया गया था, जो थोड़े ही समय में समाप्त होगया। जनता की इस गुणग्राहकता से मण्डल को बहुत प्रोत्साहन मिला जिसके परिणामस्वरूप मण्डल इस पुस्तक का दूसरा संस्करण ब्यावर निवासी श्रीमान् सेठ पन्नालालजी पूनमचन्दजी काकरिया की ओर से अर्द्ध मूल्य में जनता की सेवा में रख रहा है।

पुस्तक का विषय तो पुस्तक के नाम से ही प्रकट है। रही विषय प्रतिपादन की बात। इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं और पाठकों की ओर से सूचना आने पर ही हम यह जान सकते

हैं, कि संग्राहक, सम्पादक आदि कार्यकर्त्ताओं को अपने कार्य में कहाँ तक सफलता मिली है।

अन्त में, हम इस बात को स्पष्ट कर देना उचित समझते हैं, कि पूज्य श्री के व्याख्यान साधु भाषा में और शास्त्र-सम्मत ही होते हैं, लेकिन कार्यकर्त्ताओं की असावधानी से त्रुटि रहना सम्भव है। अतः पाठक महाशय किसी त्रुटि के दिखाई देने पर हमें सूचित करने की कृपा करें। हम ऐसे सज्जनों का आभार मानेंगे और आगामी संस्करण में त्रुटि न रहने देने का प्रयत्न करेंगे। इस संस्करण का प्रूफ संशोधन आदि कार्य में श्रीयुत लालचन्दजी मूणोत तथा प्रेस के मैनेजर महोदय ने सहायता दी है इसलिए हम आपके आभारी हैं। इत्यलम्।

रतलाम
आषाढ़ी पूर्णिमा
सं० २००१

बालचन्द श्रीश्रीमाल,
सेक्रेटरी
हीरालाल नांदेचा,
प्रेसीडेन्ट



अध्याय-सूची ।



नाम अध्याय	पृष्ठांक
१—विषय प्रवेश	१—६
२—लाभ और माहात्म्य	७—१५
३—अब्रह्मचर्य से हानि	१६—२४
४—ब्रह्मचर्य व्रत	२५—३२
५—व्रत रक्षा के उपाय	३३—४०
६—स्त्रियाँ और ब्रह्मचर्य	४१—५३
७—विवाह	५४—७५
८—आधुनिक विवाह	७६—९४
९—देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत	९५-११३
१०—अतिचार	११४-१२०
११—उपसंहार	१२१-१२४



ब्रह्मचर्य-व्रत ।

(१)

विषय-प्रवेश



'ब्रह्मचर्य' एक ही शब्द नहीं है, किन्तु 'ब्रह्म' शब्द में 'चर्य' कृत्य प्रत्ययान्त से बना हुआ संस्कृत शब्द है। ब्रह्म + चर्य = ब्रह्मचर्य।

ब्रह्मचर्य शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त

'ब्रह्म' शब्द के वैसे तो कई अर्थ होते हैं, परन्तु यहाँ यह शब्द वीर्य, विद्या और आत्मा के अर्थ में है। 'चर्य' का अर्थ, रक्षण अध्ययन तथा चिन्तन है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्य रक्षा, विद्याध्ययन और आत्म चिन्तन है। 'ब्रह्म' का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान भी होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य का अर्थ उत्तम काम या कुशलानुष्ठान का आचरण भी है। ब्रह्मचर्य शब्द के इन अर्थों पर दृष्टिपात करने से, हम, इस निर्णय पर पहुंचते हैं, कि जिस आचरण द्वारा आत्म-चिन्तन हो, आत्मा अपने आप को पहचान सके और अपने

लिये वास्तविक सुख को प्राप्त कर सके, उस आचरण का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इस अर्थ में, ब्रह्मचर्य शब्द के ऊपर कहे हुये सब ही अर्थ आ जाते हैं।

ब्रह्मचर्य की परिभाषा।

आत्मचिन्तन के लिये, इन्द्रियों और मन पर विजय पाना आवश्यक है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार, इन्द्रियाँ मन के, मन बुद्धि के और बुद्धि आत्मा के अधीन एवं आत्मा की सहायिका होना चाहिये। ऐसा होने पर ही आत्मा अपने आप को जान सकता है। इन्द्रियें, मन और बुद्धि का कर्त्तव्य, आत्मा को बलवान तथा पुष्ट बनाना है। बलवान आत्मा ही अपना स्वरूप जान सकता है, विद्याध्ययन में समर्थ हो सकता है और उत्तम काम तथा कुशलानुष्ठान कर सकता है। इसलिये इन्द्रियें, मन और बुद्धि का काम आत्मा को बलवान बनाना, आत्मा के हित को दृष्टि में रखना, आत्मा का अहित करने वाले कामों से दूर रहना है। इन्द्रियों और मन का, अपने इस कर्त्तव्य पर स्थिर रहने का नाम ही 'ब्रह्मचर्य' है।

आत्मा का हित, अपना स्वरूप जानने में है। आत्मा, अपना स्वरूप तभी जान सकता है, जब उसके सहायक एवं सेवक इन्द्रियाँ तथा मन, उसके आज्ञावर्ती और शुभचिन्तक हों। विपरीतावस्था में, आत्मा का अहित स्वाभाविक ही है। आत्मा के सहायक तथा सेवक यही इन्द्रियें और मन हैं, जो सुख की अभिलाषा से दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। इन्द्रियों का, सुख की अभिलाषा से

दुर्विषयों की ओर दौड़ना, तथा मन का इन्द्रियानुगामी होना, आत्मा के लिए अहित-कारक है। आत्मा का हित तभी है, जब न तो इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर दौड़ें, न इन्द्रियों के साथ ही साथ मन भी आत्मा का अशुभ चिन्तक बने। इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना, दुर्विषयों की चाह न करना और सुख की लालसा से उन्हें न भोगना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

इन्द्रियें पाँच हैं, कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा। इन पाँचों इन्द्रियों के पांच विषय हैं, शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श अर्थात् सुनना देखना सूँघना स्वाद लेना और छूना। यद्यपि ये इन्द्रियें हैं सुनने, देखने, सूँघने, स्वाद लेने और स्पर्श करने के लिए ही–इसी कारण इनका नाम ज्ञानेन्द्रियाँ भी है—लेकिन ये ज्ञानेन्द्रियाँ तभी होती हैं और तभी आत्मा का हित भी कर सकती हैं, जब दुर्विषयों में लिप्त न हों, उनके भोग में सुख न मानें, और अपने आप को दुर्विषय भोग के लिए न समझें। इसी प्रकार मन भी आत्मा का हित करनेवाला तभी है, जब वह अपने पद से भ्रष्ट होकर, इन्द्रियों का अनुगामी न बन जावे और न इन्द्रियों को ही दुर्विषयों की ओर जाने दे। मन का काम इन्द्रियों को सुख देना नहीं, किन्तु आत्मा को सुख देना है और इन्द्रियों को भी उन्हीं कामों में लगाना है, जिनसे आत्मा सुखी हो। इन्द्रियों और मन का, इस कर्त्तव्य को समझ कर इस पर स्थिर रहना, इसी का नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

गाँधीजी ने, 'ब्रह्मचर्य' के अर्थ में लिखा है—"ब्रह्मचर्य का

अर्थ, सभी इन्द्रियों और सम्पूर्ण विकारों पर पूर्ण अधिकार कर लेना। सभी इन्द्रियों को तन, मन और वचन से, सब समय और सब क्षेत्रों में संयत करने को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं।"

गांधीजी कृत ब्रह्मचर्य की परिभाषा

यद्यपि सब इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ने का नाम ब्रह्मचर्य है लेकिन व्यवहार में, ब्रह्मचर्य का अर्थ, केवल 'वीर्यरक्षा' ही लिया जाता है। इस व्यवहारिक अर्थ—अर्थात् पूर्ण रूपेण वीर्यरक्षा—से भी इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ना ही मतलब निकलता। पूर्णतया वीर्यरक्षा तभी हो सकती है जब सभी इन्द्रिय और मन दुर्विषयों की ओर न दौड़ें। यदि एक भी इन्द्रिय दुर्विषय की ओर दौड़ती है—उसे चाहती है और उसमें सुख मानती है—तो सम्पूर्णतया वीर्यरक्षा, कदापि नहीं हो सकती। इसलिये, पूर्णरीति से वीर्यरक्षा का अर्थ भी यही है, जो ऊपर कहा गया है अर्थात् सर्वप्रकार से असंयम परित्याग रूप इन्द्रियों और मन का संयम।

ब्रह्मचर्य की व्यवहारिक परिभाषा

ब्रह्मचर्य मन, वचन और शरीर से होता है, इसलिये ब्रह्मचर्य के तीन भेद हो जाते हैं अर्थात् मानसिक ब्रह्मचर्य, वाचिक ब्रह्मचर्य और शारीरिक ब्रह्मचर्य। मन, वचन और काय इन तीनों द्वारा पालन किया गया ब्रह्मचर्य ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है अर्थात्

ब्रह्मचर्य के तीन भेद और उनका सम्बन्ध

मन में ही अब्रह्मचर्य की भावना हो न वचन द्वारा ही अब्रह्मचर्य प्रकट हो और न शरीर द्वारा ही अब्रह्मचर्य की क्रिया की गई हो इसका नाम पूर्ण ब्रह्मचर्य है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है—

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्था सु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

'शरीर मन और वचन से, सब अवस्थाओं में, सर्वदा और सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहा है।'

मैथुन में, मैथुनाङ्ग भी शामिल हैं, जिनका वर्णन आगे 'ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय' प्रकरण में किया जायगा।

कायिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, शरीर द्वारा अब्रह्मचर्य की कोई क्रिया न की गई हो। यानी, शरीर से, अब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति न हुई हो। मानसिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में दुर्विषयों का चिन्तन न किया जावे, अर्थात मन में अब्रह्मचर्य की भावना भी न हो। वाचिक ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जिसके सद्भाव में, अब्रह्मचर्य-सम्बन्धी वचन न कहा जावे। इन तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्य के सद्भाव को—यानी इन्द्रियों और मन का दुर्विषयों की ओर न दौड़ने को—पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते हैं।

कायिक, मानसिक और वाचिक ब्रह्मचर्य का, परस्पर कर्त्ता, क्रिया और कर्म का-सा सम्बन्ध है। पूर्ण ब्रह्मचर्य, वहीं हो सकता है, जहाँ उक्त प्रकार के तीनों ब्रह्मचर्य का सद्भाव हो। एकाध

अभाव में, दूसरे और तीसरे का—एक रूप में नहीं तो शनै शनै - अभाव होना स्वाभाविक है।

सारांश यह कि, इन्द्रियों को दुर्विषयों से निवृत्त होने, मन को दुर्विषयों की भावना न करने, दुर्विषयों से उदासीन रहने, मैथुनाङ्गों सहित सब प्रकार के मैथुन त्यागने और पूर्ण रीति से, वीर्यरक्षा करने का कायिक, वाचिक और मानसिक शक्ति को, आत्मचिन्तन, आत्महित-साधन तथा आत्मविन्[illegible]यन में लगा देने का ही नाम 'ब्रह्मचर्य' है।

---

(२)

लाभ और माहात्म्य

तवे सुवा उत्तम बम्भचेरं ।

सूत्रकृतांग सूत्र ।

'ब्रह्मचर्य ही उत्तम तप है।'

ब्रह्मचर्य से क्या लाभ होता है, और ब्रह्मचर्य का कैसा माहात्म्य है, यह संक्षेप में नीचे बताया जाता है।

आत्मा का ध्येय, संसार के जन्म-मरण से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा, इस ध्येय को तभी प्राप्त कर सकता है

शरीर और धर्म का सम्बन्ध।

अब उसे इस बात की आवश्यकता हो—अर्थात् शरीर स्वस्थ हो [illegible] धर्म नहीं हो सकता और बिना धर्म के, आत्मा अपने उक्त ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। शास्त्रकारों ने कहा है—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

[illegible]।

शरीर ही, सब धर्मों का प्रथम और उत्तम साधन है।

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आरोग्य ही मूल कारण है।

ब्रह्मचर्य से शारीरिक स्वस्थता।

आत्मा को, अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए शरीर की आवश्यकता है और [illegible] आराधना ब्रह्मचर्य के साथ। [illegible] में असमर्थ रहता है। [illegible] की पूर्ति होती है, अर्थात्, शरीर स्वस्थ रहता है, [illegible] नहीं फटकने पाता।

वैद्यक ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य [illegible] बनाने के लिए कहा है —

मृत्यु व्याधि जरा नाशि, पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महायत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥

'मैं सत्य कहता हूँ कि मृत्यु, व्याधि और बुढ़ापे का नाश करने वाली अमृत के समान औषध ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य मृत्यु [illegible] बुढ़ापे का नाश करने वाला महान् [illegible] है।'

ब्रह्मचर्य से धर्म रक्षा

तात्पर्य यह है, कि ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ रहता है जिससे धर्म का पालन होता है। इतना ही नहीं, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करना भी धर्म ही है। यह धर्म का प्रधान अंग एवं धर्म का प्रधान रक्षक है। इसके लिए प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है —

पउम सर तलाग पालि भूयं महासगड अरग तुंब भूयं महानगर पागार कवाड फलिह भूयं रज्जु पिणद्धो व्व इंदकेऊ विसुद्धणेगगुण संपिणद्धं जम्मि य भग्गम्मि होइ सहसा सव्वं संभग्गमथियचुण्णियकुसल्लिय पल्लट्ट पडिय खंडिय परिसडिय विणासिय विणयसील तव नियम गुण समूहं।

'ब्रह्मचर्य, धर्म रूप पद्मसरोवर की पाल के समान रक्षक है। यह दया, क्षमा आदि गुणों का आधारभूत एवं धर्म की शाखाओं का आधार स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य धर्म रूप महानगर का कोट है, और धर्म रूप महानगर का प्रधान रक्षक द्वार है। ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर सभी प्रकार के धर्म, पहाड़ से गिरे हुए कच्चे घड़े के समान चूर चूर हो जाते हैं।'

ब्रह्मचर्य, धर्म कैसा आवश्यक अंग है, यह बताते हुए, और ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए, मुनि ने कहा है —

पंच महव्वय सुव्वय मूलं समण मणाइल साहु सुचिण्णं।
वेर विरामण पज्जवसाणं सव्व समुद्द महोदहि तित्थं ॥१॥

तित्थकरेहिं सुदेसिय मग्ग नरग तिरिच्छ विवज्जिय मग्ग।
सव्व पवित्तसुनिम्मिय सार सिद्धि विमाण अवगुय दार ॥२॥
देव नरिंद नमंसिय पूइय सव्व जगुत्तम मंगल मग्ग।
दुद्धरिस गुणनायक मक्क मोक्ख पहस्स वडिं सग भूय ॥३॥

'ब्रह्मचर्य, पाँच महाव्रत का मूल है अतः उत्तम व्रत है। अथवा पंच महाव्रत वाले साधुओं के उत्तम व्रतों का ब्रह्मचर्य मूल है। ऐसे ही श्रावकों के सुव्रतों का भी ब्रह्मचर्य मूल है। ब्रह्मचर्य लोप रहित है साधुजनों से भली प्रकार पालन किया गया है, वैरानुबन्ध का अन्त करने वाला है और स्वयम्भूरमण महोदधि के समान दुस्तर संसार से तारने का उपाय है ॥१॥ ब्रह्मचर्य, तीर्थङ्करों द्वारा सदुपदेशित है, उन्हीं के द्वारा इसके पालन का मार्ग बताया गया है, और इसके उपदेश द्वारा नरक गति तथा तिर्यक गति का मार्ग रोक कर, सिद्ध गति तथा विमानों के द्वार खोलने का पवित्र मार्ग बताया गया है ॥२॥ यह ब्रह्मचर्य देवेन्द्र और नरेन्द्रों से पूजित लोगों के लिए भी पूजनीय है, समस्त लोकों में सर्वोत्तम मंगल का मार्ग है सब गुणों का अद्वितीय तथा सब नायक है और मोक्ष-मार्ग का भूषण रूप है ॥३॥

ब्रह्मचर्य ही तप है।

मोक्ष के प्रधान साधन-तप में भी, ब्रह्मचर्य को पहला स्थान है। जैन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को सब से उत्तम तप माना गया है, इसका एक प्रमाण इस प्रकरण के प्रारम्भ में दिया ही जा चुका है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में भी कहा है —

जंबू ! एत्तो य बंभचेरं उत्तम तव नियम णाण
दंसण चरित्त सम्मत्त विणय मूलं
यम नियम गुणप्पहाणजुत्तं हिमवंत महंत
तेय मंतं पसत्थ गंभीर थिमिय मज्झं ।

'हे जम्बू ! यह ब्रह्मचर्य, उत्तम तप नियम ज्ञान, दर्शन चरित्र सम्यक्त्व और विनय का मूल है। जिस प्रकार सब पर्वतों में हिमालय महान् और तेजस्वी है, उसी प्रकार सब तपस्याओं में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है।'

अन्य ग्रन्थों में भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना गया है। वेद भी, ब्रह्मचर्य को ही तप मानते हैं। जैसे —

तपो वै ब्रह्मचर्यम् ।

श्रुति

'ब्रह्मचर्य ही तप है।'

गीता में भी ब्रह्मचर्य को तप माना है। उसमें कहा है —

ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते ।

अध्याय १७

'ब्रह्मचर्य और अहिंसा शरीर का उत्तम तप है।'

इस प्रकार अन्य ग्रंथकारों ने भी, ब्रह्मचर्य को उत्तम तप माना है।

पारलौकिक लाभ का ब्रह्मचर्य एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य से, आत्मा, परलोक सम्बन्धी सभी सुखों को प्राप्त कर सकता है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है —

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक लाभ।

अज्जव साहुजणाचरिय मोक्खमग्गं
विसुद्ध सिद्धि गइनिलय सासयमव्वाबाहम पुणब्भव

'ब्रह्मचर्य, अन्तःकरण को पवित्र एवं स्थिर रखने वाला है, साधुजनों से सेवित है, मोक्ष का मार्ग और सिद्धगति का गृह है, शाश्वत है, बाधा रहित है, पुनर्जन्म को नष्ट करने के कारण अपुनर्भव है, प्रशस्त है, रागादि का अभाव करने से सौम्य है, सुख स्वरूप होने से शिव है, दुःख सुखादि द्वन्द्वों से रहित होने से अचल है, अक्षय तथा अचल है, मुनियों द्वारा सुरक्षित एवं प्रचारित है, भव्य है, भव्य जनों द्वारा आचरित है, शङ्कारहित है, निर्भयता का देने वाला, विशुद्ध तथा झंझटों से दूर रखने वाला एवं खेद और अभिमान को नष्ट करने वाला है।'

प्रश्न व्याकरण सूत्र में आगे कहा है —

जम्मिय आराहियम्मि वय मिणं सव्व सील
तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती
मुत्ती तहेव इहलोइय पारलोइय जसेय कित्ती।

'ब्रह्मचर्य की आराधना से सभी व्रत आराधित होते हैं। तप, शील विनय संयम, क्षमा, गुप्ति और मुक्ति सिद्ध होती है, तथा इस लोक और परलोक में यश कीर्ति की विजयपताका फहराती है।'

अन्य प्रकार भी ब्रह्मचर्य से परलोक सम्बन्धी लाभ बताते हुए कहते हैं —

> समुद्र तरणे यद्वत् उपायो नौ प्रकीर्तिता ।
> संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम् ॥
>
> स्मृति ।

'समुद्र से पार जाने के लिये जिस प्रकार नौका श्रेष्ठ साधन है, उसी प्रकार संसार से तरने के लिए ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट साधन है।'

ग्रन्थकारों ने, यज्ञ भी ब्रह्मचर्य को ही माना है। जैसे —

> अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य मेव ।
>
> छा॰ न्दोग्योपनिषद् ।

जिसे यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है।

संसार बन्धन से छूट कर, मोक्ष प्राप्ति के लिये चारित्र धर्म बताते हुये भगवान् ने, जिन पाँच महाव्रत का उपदेश दिया है, उनमें से ब्रह्मचर्य, चौथा महाव्रत है। ब्रह्मचर्य के बिना, चारित्र धर्म का पूर्ण रूपेण पालन नहीं हो सकता। आत्मा को संसार बन्धन से छुड़ा कर, मोक्ष दिलाने वाले चारित्र धर्म का, ब्रह्मचर्य एक प्रधान और आवश्यक अंग है। ब्रह्मचर्य के बिना, न तो अब तक कोई मुक्त हुआ है, न हो ही सकता है। सिद्धात्माओं को, सिद्ध गति [illegible] वाला यह ब्रह्मचर्य ही है। इस प्रकार, पारलौकिक लाभ [illegible] प्रधान साधन है।

ब्रह्मचर्य से पारलौकिक ही नहीं, किन्तु इहलौकिक लाभ भी है। ऊपर बताया जा चुका है कि ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। स्वास्थ्य अच्छा रहने से ही इहलौकिक कार्य सुचारु रूप से सम्पादन हो सकते हैं।

ब्रह्मचर्य से इहलौकिक लाभ।

सांसारिक जीवन में, शरीर स्वस्थ, सुन्दर, बलवान, एवम् चिरायु रहने की, विद्या की, धन की, कर्त्तव्य-दक्षता की और यशादि की अभिलाषा, स्वाभाविक ही रहती है। ब्रह्मचर्य से, ये सभी अभिलाषायें पूर्ण होती हैं। प्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने ब्रह्मचर्य की प्रशंसा करते हुए कहा है —

चिरायुषः सुसंस्थाना दृढ संहननान्विताः।
तेजस्विनो महावीर्या भवयुर्ब्रह्मचर्यतः॥

'ब्रह्मचर्य से शरीर चिरायु, सुन्दर, दृढ़ कलेवर तेजपूर्ण और पराक्रमी होता है।'

वैदिक ग्रन्थों में भी कहा गया है —

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम्।
ब्रह्मचर्यमयोह्यात्मा ब्रह्मचर्येव तिष्ठति॥

'ब्रह्मचर्य ही सब से उत्तम ज्ञान है, सर्वोत्कृष्ट बल है, यह आत्मा निश्चय रूप से ब्रह्मचर्यमय है और ब्रह्मचर्य में ही शरीर में ठहरा हुआ है।'

इन प्रमाणों से यह बात भली भाँति सिद्ध हो जाती है, कि ब्रह्मचर्य से शरीर सुन्दर भी रहता है, बलवान भी रहता है, तेजस्वी भी होता है और यश-कीर्ति भी प्राप्त होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य, इहलौकिक सुखों का भी साधन है। लौकिक वैभव, विद्या, धन आदि—सभी प्राप्त होते हैं, जब शरीर स्वस्थ हो और उसमें बल तथा साहस हो। ब्रह्मचर्य से शरीर स्वस्थ भी रहता है और शरीर में, बल तथा साहस भी रहता है।

विद्वानों का मत है, कि ब्रह्मचर्य के बिना, विद्या प्राप्त नहीं होती। विद्या प्राप्ति के लिए, ब्रह्मचर्य का होना आवश्यक है अथर्ववेद में कहा है —

ब्रह्मचर्येण विद्या।

ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्त होती है।

विदुर नीति में कहा है —

'विद्यार्थं ब्रह्मचारी स्यात्'

यदि विद्या के इच्छुक हो तो ब्रह्मचारी बनो।'

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, लौकिक और लोकोत्तर, दोनों सुखों का प्रधान साधन है। इसकी पूर्ण रूपेण प्रशंसा करना, समुद्र को हाथों के सहारे तैरने का साहस करना है।

ब्रह्मचर्य पर अपवाद

कुछ लोगों का कथन है, कि पूर्ण ब्रह्मचारी को मोक्ष स्वर्ग, प्राप्त नहीं होता। क्योंकि, पूर्ण ब्रह्मचा निःसन्तान रहते हैं और —

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच ।

स्मृति ।

पुत्रहीन की गति नहीं होती, और स्वर्ग तो कभी भी नहीं मिलता है ।'

इस श्लोक से, पूर्ण ब्रह्मचारी को स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति से वंचित बताया जाता है, लेकिन इस श्लोक को खण्डन करने वाला दूसरा यह प्रमाण भी है —

स्वर्गं गच्छन्ति ते सर्वे ये केचिद् ब्रह्मचारिणः ।

स्मृति ।

'जितने भी ब्रह्मचारी हैं, वे सभी स्वर्ग को जाते हैं ।'

और भी कहा है कि —

अनेकानि सहस्राणि, कुमारब्रह्मचारिणा ।
दिवंगतानि राजेन्द्र, अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥

'हे राजन ! हजारों मनुष्य ऐसे हुए हैं जो आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर कुल-सन्तति को न बढ़ाते हुए भी दिव्य गति को प्राप्त की है

जैन शास्त्रानुसार, स्वर्ग प्राप्ति कोई बड़ी बात नहीं है । बड़ी बात तो मोक्ष प्राप्त करना है । ब्रह्मचर्य से संसार की सभी ऋद्धि मिल जावे । स्वर्ग का राज्य भी प्राप्त हो जावे तब भी यदि इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त न हो सकता होता, तो जैन शास्त्र इसे धर्म का अंग न मानते । क्योंकि जैन शास्त्र उसी वस्तु को उपयोगी और महत्व की मानते हैं, जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो । लेकिन उक्त प्रमाण जिन ग्रन्थों के हैं, वे ग्रन्थ स्वर्ग को ही अन्तिम ध्येय मानते हैं । फिर भी ऊपर दिए हुए श्लोकों में से, पहला श्लोक दूसरे श्लोक से अप्रामाणिक ठहरता है ।



(३)

अब्रह्मचर्य से हानि ।

जहाय किंपाग फला मणोरमा
रसेण वणेणाय भुज्जमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एओवमा काम गुणे विवाग ॥

उत्तराध्ययन सूत्र ३२ वाँ अ०

'जिस प्रकार किंपाकफल वर्ण और रस से मनोरम और स्वादिष्ट होते हैं, परन्तु खाने पर मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता है, उसी प्रकार काम भोग भोगने में तो अच्छे लगते हैं परन्तु परिणाम बहुत दुःखदायी होता है। इसलिये काम भोग को त्यागो।'

इन्द्रियों का दुर्विषय-लोलुप [redacted] होने और वीर्य का पूर्णरूपेण सुरक्षित रहने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। इसके विपरीत अर्थात् इन्द्रियों का दुर्विषयलोलुप होने, दुर्विषय भोग में सुख मानने और वीर्य रक्षित न करने का नाम अब्रह्मचर्य है। अब्रह्मचर्य का दूसरा नाम मैथुन भी है, लेकिन मैथुन में मैथुनाङ्ग भी शामिल हैं। ग्रन्थकारों ने, ब्रह्मचर्य का रूप बताने के लिए मैथुन की व्याख्या इस प्रकार की है-

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं मेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

'स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रिया निवृत्ति, ये मैथुन के आठ अंग हैं। इन अंगों से परे रहना का नाम ब्रह्मचर्य है।

देखी या सुनी हुई स्त्रियों को याद करना, 'स्मरण' नामक मैथुन का पहला अंग है। स्त्रियों की प्रशंसा करना, उनके विषय में बातचीत करना—'कीर्तन' मैथुन का दूसरा अंग है। स्त्रियों के साथ किसी प्रकार के खेल खेलना 'केलि' मैथुन का तीसरा अंग है। काम दृष्टि से किसी स्त्री को देखना, 'प्रेक्षण' मैथुन का चौथा अंग है। स्त्रियों से छिप कर बातें करना 'गुह्य भाषण' पाँचवा अंग है। स्त्री सम्बन्धी भोग भोगने का विचार लाना 'संकल्प' मैथुन का छठा अंग है। स्त्री-प्राप्ति की चेष्टा करना, 'अध्यवसाय' नाम का सातवाँ और स्त्री सम्भोग* द्वारा वीर्य नष्ट करना, 'क्रियानिवृत्ति' मैथुन का आठवाँ अंग है।

---

*जिस प्रकार पुरुषों के लिये स्त्री सम्बन्धी आठों कार्य त्याज्य हैं इसी तरह स्त्रियों के लिए भी पुरुष सम्बन्धी आठों बातें त्याज्य हैं।

ब्रह्मचर्य के विरोधी अब्रह्मचर्य-मैथुन के उक्त आठ अंगों में से जिस २ अंग की पूर्ति होती जाती है, ब्रह्मचर्य, उतने ही उतने अंश में नष्ट होता जाता है और मैथुन के आठों अंग की पूर्ति होने पर, ब्रह्मचर्य, पूर्ण रूपेण नष्ट हो जाता है। मैथुन और ब्रह्मचर्य, परस्पर विरोधी हैं, इसलिए जहां एक है, वहां दूसरा नहीं ठहर पाता।

मैथुन और मैथुनाङ्ग का नाम ही अब्रह्मचर्य है। वीर्य भी मैथुन से ही नष्ट होता है। इन्द्रियों का दुर्विषय-लोलुप होना ही मैथुन है, और मैथुन ही इन्द्रियों की दुर्विषय लोलुपता है।

मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से अर्थात् आंशिक रूप में ब्रह्मचर्य खण्डित होने से मैथुन का सर्वाङ्ग में सेवन और ब्रह्मचर्य का नाश होना स्वाभाविक है। क्योंकि, मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से एक न एक इन्द्रिय दुर्विषय-लोलुप बनेगी ही, और किसी भी एक इन्द्रिय के दुर्विषय लोलुप बन जाने पर सभी इन्द्रिय दुर्विषय लोलुप बन जाती हैं। उदाहरण के लिये, यदि कान स्त्री शब्द में सुख मानते हैं, तो नाक, उनके शरीर की गन्ध में, जीभ उनसे सम्भाषण करने में, नेत्र उनका रूप देखने में और त्वचा उनका स्पर्श करने में सुख मानेगी। क्योंकि—

आंशिक मैथुन सेवन से हानि

> इन्द्रियाणां तु सर्वेषाम् यद्येकंक्षरतीन्द्रियम्।
> तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृते पादादिवोदकम्॥
>
> मनुस्मृति अ० २

'जिस प्रकार, जल की मशक में एक भी छेद हो जाने पर फिर उसमें जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार सब इन्द्रियों में से, एक भी इन्द्रिय के विषय-लोलुप बनने पर, बुद्धि नष्ट हो जाती है।'

बुद्धि के नष्ट होने पर, इन्द्रिय-संयम कहां? स्वभावत विषय प्रिय इन्द्रियाँ फिर तो दुर्विषयों की ही ओर दौड़ती हैं। बुद्धि के नष्ट हो जाने से, इन्द्रियें निरंकुश हो जाती हैं और फिर आत्मा को दिन प्रतिदिन, पतन की ही ओर अग्रसर करती हैं। नष्ट बुद्धि इन्द्रियों के वश होकर, यह सिद्धान्त मानने लगता है —

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम् ॥
गी० अ० १६

'जगत् असत्य, निराधार और अनीश्वर है। यह यों ही बना है। काम के सिवा इस संसार के बनने का दूसरा क्या हेतु हो सकता है?'

इस सिद्धान्त को मान कर फिर—

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ।
गी० अ० १६

'केवल काम भोग के लिये ही अन्याय से धन बटोरने लगते हैं।

तात्पर्य यह, कि मैथुन के किसी एक भी अँग के सेवन से अर्थात् एक भी इन्द्रिय की दुर्विषय-लोलुपता से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है और अब्रह्मचर्य, पूर्ण-रूपेण अपना आधिपत्य

संक्षिप्त में, अब्रह्मचर्य से तात्पर्य है—दुर्विषय भोग, मैथुन, या वीर्य का खण्डित करना। जैन शास्त्रों ने ही नहीं, किन्तु अन्य ग्रन्थकारों ने भी इस अब्रह्मचर्य की लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही दृष्टि से, बड़ी निन्दा की है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अब्रह्मचर्य को चौथा अधर्म द्वार मानते हुए कहा है —

अब्रह्मचर्य की निन्दा और इससे हानि।

जम्बू ! अबमचउत्थ सदेव मणुया सुरस्स लोगस्स पत्थणिज्ज पक पणग पास जाल भूयत्थी

हे जम्बू! चौथा अधर्म द्वार अब्रह्मचर्य है। देव, असु मनुष्य, लोक-पति आदि इस अब्रह्मचर्य रूपी कीचड़ की इच्छा करते हुए हैं। देव असुर, मनुष्यादि को यह जाल के समान फं वाला है। पुरुषों के लिए यह नपुंसकत्व का कारण है। तप, संयम व ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न-रूप है अर्थात् इन्हें नाश करने वाला है। वि प्रमाद आदि प्रमादों का मूल है। इन्द्रियों के समीप जो कायर ए कापुरुष हैं, उन लोगों द्वारा सेवित एवं सज्जनों द्वारा निन्दित वर्ज्य तीनों लोक में प्रतिष्ठित एवं जरा मृत्यु रोग शोक की वृद्धि करने वा है। वध, बन्धन, आघात तथा दर्शन मोहनीय और चरित्र मोहनीय का हेतु है। प्राणियों को इसका परिचय दीर्घकाल से है, इसलिए इ अन्त करना कठिन है।

प्रश्न व्याकरण सूत्र में, आगे अब्रह्मचर्य के तीस न बताते हुये यह बताया गया है, कि बड़ी-बड़ी ऋद्धि वाले च

तथा माण्डलिक राजाओं की भी इससे अवनति रही है। इसकी निन्दा करते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र में आगे कहा है —

मेहुणसन्नप गिद्धाय माह मरिया सत्थेहि हणंति एक मेक्क
विसय विसे उदारणहिं अवरे पर दारेहिं हिंसति

मैथुन में गृद्ध अब्रह्मचर्य के अज्ञान से भरे हुए लोग परस्पर एक दूसरे की घात करते हैं विष देकर मार डालते हैं। यदि पर दारा हुई तो उस स्त्री का पति जारपति की घात करता है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य मृत्यु का कारण है। अब्रह्मचर्य से धन और स्वजन का नाश होता है एवं परदारा में गृद्ध स्त्री मोह से भरे पुरुष घोड़े, हाथी बैल, भैंसे, मृग आदि पशु परस्पर लड़ कर मर जाते हैं और अपनी सन्तान तक की घात कर डालते हैं। इसी प्रकार पशु और मनुष्य भी परस्पर युद्ध करते हैं। अब्रह्मचर्य के कारण मित्रों में भी वैर भाव उत्पन्न हो जाता है। अब्रह्मचर्य से सिद्धान्त द्वारा प्ररूपित चारित्र रूपी मूल गुण का भेदन हो जाता है। श्रुत चारित्र धर्म में रत जीव भी स्त्री संग से क्षण मात्र में भ्रष्ट बन जाते हैं। यशस्वी और सुव्रती भी स्त्री संग से अपयश तथा अकीर्ति को प्राप्त होते हैं। अब्रह्मचर्य से शरीर रोगी बना रहता है और अन्त में शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पड़ना पड़ता है। अब्रह्मचर्य से पर-स्त्री-गमन के कारण कितने ही जीव बन्धन में पड़ते हैं और मारे जाते हैं। अब्रह्मचर्य के मोह से पराभव को पाये हुवे जीव इस प्रकार दुर्गति के अधिकारी बनते हैं।'

प्रश्न व्याकरण सूत्र में आगे यह भी बताया गया है, कि अब्रह्मचर्य के कारण स्त्रियों के लिए कैसे-कैसे महान् संग्राम हुए हैं।

स्त्रियों के लिए होने वाले संग्रामों का वर्णन करने के पश्चात् प्रश्न व्याकरण सूत्र में लिखा है —

इहलोएसावनद्वा परलोएयनट्ठा महया मोह तिमिसघयार घोरे तस थावर सुहुम बादरेसुय पज्जत्तम पज्जत्तक साहारण सरीर पत्तेय

'इन्द्रियों का दुर्विषय भोग रूप मैथुन इस लोक में कष्ट-कर्त्ता और परलोक में अनिष्टकारी है। महा मोह रूप अन्धकार का स्थान है। त्रस, स्थावर, सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त आदि पर्यायों से चतुर्गति रूप संसार में विशेष समय तक और बारम्बार परिभ्रमण कराने वाले मोहनीय कर्म का वर्द्धक है।'

एसासो अबमस्स फल विवागो इह लोइयो पर लोइयो अप्प सुहो बहु दुक्खो महब्भयओ बहुरयप्प गाढा दारूणो कक्क सो असाओ वास सहस्सेहिं मुच्चनोमय अवेद्यित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति।

इस प्रकार अब्रह्मचर्य का फल इस लोक तथा परलोक में महा दुःख और महान् दुःख है। अब्रह्मचर्य महा भय का स्थान, कर्मरूपी रज से गाढ़ा तरह घिरा हुआ एवं दारुण कठोर और बिना भोगे न छूटने वाले कर्मों को बाँधने वाला है।'

गीता में अब्रह्मचर्य की निम्न प्रकार से निन्दा की है —

कामएष क्रोध एष रजोगुण समुद्भव ।
महाशनो महा पाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

अध्याय ३

मनुष्य को पाप के रास्ते ले जाने वाले रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध ही हैं। ये भुक्खड़ या पेटू महा पापी और शत्रु हैं। जिस प्रकार आग धुएँ से ढकी रहती है, कांच मैल से धुंधला दीखता है और गर्भ का बालक झिल्ली से ढका रहता है, उसी प्रकार सारा संसार काम से ढका हुआ है। यानी जिसमें काम न हो—जो काम से परे हो—वह संसार से भी परे है। हे अर्जुन! कभी तृप्त न होने वाली यह काम रूपी आग आत्मा की सदा की वैरिन है। ज्ञानियों के ज्ञान को भी यह ढांक देती है। इस काम के ठहरने की जगह इन्द्रिय, मन और बुद्धि हैं। यह इन्हीं के सहारे ज्ञान को ढांक कर मनुष्य को मोहित करता है।'

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

गीता अ० १६

'काम, क्रोध और लोभ ये नरक के द्वार और आत्मा का नाश करने वाले हैं। इसलिये इन तीनों को त्याग देना चाहिये।'

इस प्रकार, अब्रह्मचर्य की सब ने निन्दा की है। परलोक सम्बन्धी जो हानियां इससे होती हैं, उनका वर्णन तो किया ही गया है लेकिन इस लोक में भी इससे अनेक हानियां हैं। इससे होने वाली समस्त हानियों का वर्णन करना कठिन है।

अब्रह्मचर्य मैथुन से, हिंसा का महान् पाप भी होता है। भगवती सूत्र में, गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर, भगवान् ने फर्माया है कि 'जिस प्रकार रूई से भरी हुई नली में, तप्त लोहे की सलाई डालने से रूई का नाश होता है उसी प्रकार, कामाचार सेवन करने वाला, स्त्री योनि के जन्तुओं का नाश करता है। ये जन्तु सज्ञी-पंचेन्द्रिय हैं, और उनकी संख्या अधिक से अधिक नवलाख है। इन नवलाख जीवों के सिवा, संमूर्छिम जीवों की तो गिन्ती ही नहीं है।' इस प्रकार एक बार के मैथुन से अनेक जीवों की हिंसा का पाप होता है।

अब्रह्मचर्य से हिंसा।

स्त्री-योनि में जीव होते हैं इस बात को दूसरे लोग भी मानते हैं। वात्सायन काम-सूत्र का टीकाकार और रति-रहस्य का कर्ता भी स्त्री-योनि में जीव होना स्वीकार करता है। जब स्त्री-योनि में जीव हैं, तो मैथुन से उनका नाश होना और हिंसा का पाप लगना स्वाभाविक है। इसलिए अहिंसाव्रत की रक्षा की दृष्टि से भी अब्रह्मचर्य त्याज्य है।



(४)

ब्रह्मचर्य-व्रत।

विरमत बुधा योषित्सङ्गात्सुखात् क्षण भङ्गुरात्
कुरुत करुणा मैत्री प्रज्ञा वधूजन सङ्गमम्।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तन मण्डलं
शरण मथवा श्रोणी बिम्बं रणन्मणि मेखलम्॥

भर्तृहरि

'हे बुद्धिमानो! क्षणिक और नाशवान स्त्री सङ्ग के सुख को छोड़ कर मैत्री, करुणा और प्रज्ञा (ज्ञान) रूपी स्त्री का साथ करो। नरक में, जब ताड़ना होगी, तब स्त्रियों के हार भूषित स्तन-मण्डल और घुंघरूदार करधनी से शोभित कमर सहायता न करेगी।'

ब्रह्मचर्य व्रत का अर्थ।

अब्रह्मचर्य से निवर्त कर, ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा करने का नाम 'ब्रह्मचर्य-व्रत' है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करने वाले को, 'ब्रह्मचारी' कहते हैं।

कभी कोई कहे कि 'प्रतिज्ञा-रूप व्रत स्वीकार किये बिना ही, यदि ब्रह्मचर्य का पालन किया जावे, तो क्या हर्ज है? यदि कोई

ब्रह्मचर्य को व्रत रूप क्यों स्वीकारना चाहिये ?

हानि नहीं है, तो फिर ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा करने—यानी व्रत धारण करने की क्या आवश्यकता है ?' इसका उत्तर यह है, कि सकल्प हीन कार्यों की पूर्ति में सन्देह ही रहता है। सकल्प, यानी व्रत या प्रतिज्ञा कर लेने पर, कार्य में होने वाली बाधाओं को सहने की शक्ति होती है, मन में दृढ़ता रहती है और 'प्रतिज्ञा भ्रष्ट न हो जाऊँ' इस बात का भय रहता है। इसके सिवा व्रत रूप धारण किये बिना ब्रह्मचर्य पालन से, परलोक सम्बन्धी जो लाभ होना चाहिये, वह लाभ भी नहीं होता। जैन शास्त्रों में तो इस बात का प्रतिपादन है ही, लेकिन अन्य ग्रन्थों में भी यही बात कही गई है। जैसे —

> सकल्पेन विना राजन् यत्किंचित् कुरुतेनर ।
> फलस्याप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्धं क्षय भवेत् ॥
>
> पद्मपुराण ।

हे राजन्! सकल्प के बिना जो कुछ किया जाता है उसका फल बहुत थोड़ा होता है और उस कार्य के धर्म का आधा भाग नष्ट हो जाता है।'

किसी भी शुभ कार्य को करने के लिये, सकल्प का होना अत्यावश्यक है और परलोक के लिये हितकारी नियमों के पालन का संकल्प ही व्रत कहलाता है। यद्यपि, व्रत रूप धारण किये बिना भी, ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नहीं है—अच्छा ही है—लेकिन

ब्रह्मचर्य पालन से, पारलौकिक जो लाभ प्राप्त होना चाहिये, वह लाभ ब्रह्मचर्य को व्रत रूप स्वीकार किये बिना, पूर्णतया प्राप्त नहीं होता। इन सब बातों को दृष्टि में रख कर, ब्रह्मचर्य को, व्रत रूप स्वीकार करना उचित है। ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार करने से, किसी प्रकार की हानि नहीं है। हां, लाभ अवश्य हैं जो ऊपर बताये जा चुके हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह व्रत से अलग क्यों है ?

भगवान महावीर से पूर्व, बाईस तीर्थङ्कर भगवान के शासन काल में ब्रह्मचर्य नाम का व्रत अलग न था। उस समय अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ये चार ही व्रत थे। चार व्रत होने पर भी, ब्रह्मचर्य का पालन तो होता ही था, लेकिन ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह व्रत के ही अन्तर्गत हो जाता था और परिग्रह के त्याग में स्त्री आदि अब्रह्मचर्य का भी त्याग समझा जाता था। यद्यपि, अपरिग्रह व्रत में ब्रह्मचर्य व्रत का भी समावेश हो जाता है और परिग्रह के त्याग में, अब्रह्मचर्य का भी त्याग हो जाता है, परन्तु भगवान महावीर ने, अपने समय के एवं भविष्य के वक्र-जड मनुष्यों को दृष्टि में रख कर, ब्रह्मचर्य-व्रत का, अलग ही उपदेश दिया। भगवान पार्श्वनाथ तक चार ही व्रत थे, और भगवान महावीर ने पाँच व्रत का उपदेश दिया। इस बात को लेकर भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के मुनि श्री केशीस्वामीजी और भगवान महावीर के शिष्य श्री गौतम स्वामी में, चर्चा भी हुई, जिसका विस्तृत वर्णन श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में है।

शास्त्रकारा ने सुविधा की दृष्टि से, ब्रह्मचर्य-व्रत के दो भेद कर दिये हैं। एक सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत और दूसरा देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत। सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें जीवनभर के लिये मैथुन से निवृत्ति होने, वीर्य अक्षत रखने और सभी प्रकार के काम भोग न भोगने की प्रतिज्ञा की जावे। इतना ही नहीं जिन कार्यों से ब्रह्मचर्य व्रत दूषित बने, व सभी कार्य त्याग कर नव-वाडा का पालन किया जाय। इस व्रत को स्वीकार करने वाला, 'सर्वविरति पूर्ण ब्रह्मचारी कहलाता है। ऐसा पूर्ण ब्रह्मचारी मन, वचन और काय से वैक्रिय तथा औदारिक शरीर सम्बन्धी काम भोगा को न भोगता है, न भोगवाता है, न भोगने वाले को अच्छा ही समझता है। सर्वविरति ब्रह्मचारी, ऐसे अठारह प्रकार के काम भोगों को त्याग कर, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। सर्वविरति ब्रह्मचर्य को, अन्य ग्रन्थकारों ने, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य नाम दिया है।

ब्रह्मचर्य व्रत के दो भेद

देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें स्व-स्त्री की मर्यादा रखी जाव। इस स्थान पर, सर्वविरति-ब्रह्मचर्य-व्रत का ही वर्णन किया जाता है। देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का वर्णन आगे किया जायगा।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कौन कर सकते हैं, इसके लिये एक आचार्य कहते हैं —

शक्य ब्रह्म व्रत घोर शूरैर्न तु कातरैः ।
करि पर्याणमुद्वोढुं करिभिर्न तु रासभैः ॥

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना शूरों के लिये ही शक्य है, कायरों के लिये नहीं, जैसे कि हाथी का पलान, हाथी ही उठा सकता है, गधा नहीं उठा सकता।'

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, ससार-त्यागी साधु ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता। ससार-व्यवहार में रहने वाले सभी मनुष्य, एकदम से ससार-व्यवहार नहीं छोड सकते, इसलिये संसार-व्यवहार में रहने वालों के लिये, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत बतलाया गया है। इस प्रकार गृह त्यागियों के लिये सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत है और गृहस्थियों के लिये देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कौन कर सकता है ?

इन्द्रियें, पाप से नहीं मिली हैं, किन्तु पुण्य से मिली हैं। पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों को, पुण्य की ओर लगाना ही उचित है, न कि पाप की ओर। जब इन पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों द्वारा, धर्म का लाभ लिया जा सकता है, तब इनसे पाप क्यों किया जावे ? इन्द्रियों द्वारा, काम भोग भोगना, पुण्य से प्राप्त इन्द्रियों को पाप में प्रवृत्त करना है। इन्द्रियों की सार्थकता तभी है, इनके मिलने का लाभ तभी है, जब इन्हें असंयम में न लगाया जाकर, सयम में

ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकारने से लाभ।

रखा जावे। इनके द्वारा दुर्विषय भोगना—इन्द्रियों का दुर्विषय में लिप्त होना—उसी प्रकार नाशकारी है जिस प्रकार पतङ्ग के लिये दीपक की लौ से मोह करना नाशकारी है। पतंग, केवल आँखों के विषय रूप पर मोहित होने से नष्ट हो जाता है तो जिनकी पाँचों इन्द्रियाँ दुर्विषय लोलुप हों, वे नष्ट क्या न होंगे? इन्द्रियों को दुर्विषय भोग में लगाने से-दुर्विषय-लोलुप बनाने से—नाश अवश्यम्भावी है। इसलिये काम भोग के दुष्परिणामों से बचने के वास्ते सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना और पालन करना उचित है।

मोक्ष की आराधना के लिये, चारित्र धर्म के अन्तर्गत, भगवान ने जिन पाँच महा व्रतों को बताया है, उनमें से यह सर्व विरति ब्रह्मचर्य, चौथा महाव्रत है। मोक्ष-प्राप्ति के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना और पालन करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य व्रत के बिना अन्य व्रत मोक्ष के लिये, पूर्ण रूपेण सार्थक नहीं होते, न ब्रह्मचर्य के अभाव में अन्य व्रत, भली प्रकार आराधे ही जा सकते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत, मोक्ष के लिये कैसा उपयोगी है, यह बताते हुये एक आचार्य कहते हैं —

एस धम्मे धुवे नियए सासए जिण देसिए।
सिज्झा सिज्झन्ति चाणेण सिज्झिस्सन्ति तहावरे॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र।

'यह ब्रह्मचर्य धर्म, ध्रु नित्य अविनाशी और जिनदेव का कहा हुआ है। इसी ब्रह्मचर्य धर्म से, सिद्ध हुए हैं होते हैं और सिद्ध होंगे।'

ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करते हुये, एक आचार्य कहते हैं —

व्रतानां ब्रह्मचर्यं हि निर्दिष्टं गुरुकं व्रतम्।
तज्जन्य पुण्य सम्भार सयोगाद् गुरुरुच्यते ॥

'व्रतों में ब्रह्मचर्य ही बड़ा व्रत है। इसी व्रत के पुण्य संयोग से गुरु कहे जाते हैं।'

गीता में कहा है —

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

अध्याय २ ।

'जिस प्रकार कछुआ अपने सब अंगों को सिकोड़ लेता है उसी प्रकार विषयों की ओर से इन्द्रियों को सिकोड़ लेने वाला ही स्थिर बुद्धि है।'

महाभारत में कहा है —

मत्ये रतानां सततं दान्तानां मूर्ध्व-रेतसाम।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् ! सर्व पापान्य पासितम् ॥

शान्ति पर्व।

'हे राजन्! सत्य से प्रेम करने वाले ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य समस्त पापों को नष्ट करने वाला है।'

ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में, विद्वान् लोग कहते हैं —

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभो भवत्यपि।
सुरत्व मानवोयाति चान्तेयाति परागतिम् ॥ १ ॥
ब्रह्मचर्य पालनीय देवानामपि दुर्लभम्।
वीर्ये सुरक्षिते यान्ति सर्व लोकार्थ सिद्धय ॥ २ ॥

स्मृति।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य का लाभ होता है, मनुष्य भी देवता के समान दिव्य हो जाता है और ब्रह्मचर्य की साधना पूरी होने पर परमगति भी मिलती है ॥१॥ ब्रह्मचर्य, देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, इसलिये इसका पालन करना उचित है। वीर्य को सुरक्षित रखने से सब लोकों का अर्थ सिद्ध हो जाता है ॥२॥'

इस प्रकार, सर्वविरति ब्रह्मचर्य की, सब शास्त्र और ग्रन्थों ने प्रशंसा की है। यति धर्म का पूर्णतया पालन तभी हो सकता है, जब, इस सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करके, पूर्ण-रीति से पाला जावे। इस ब्रह्मचर्य-व्रत के बिना, अन्य व्रतों को स्वीकार करना तथा उनका पालन करना भी, मोक्ष के लिये पर्याप्त नहीं है। अतः मोक्षेच्छुकों को, अन्य व्रतों के साथ इस व्रत को स्वीकार करना और पालन करना आवश्यक है।

---

(५)

व्रत-रक्षा के उपाय।

जेण सुद्धचरिएण भवति सुबम्भणो, सुसमणो, सुसाहू, स इसी, स मुणी, स संजए, स एव भिक्खू जो सुद्ध चरति बमचेर।

प्रश्न व्याकरण सूत्र।

ब्रह्मचर्य के शुद्धाचरण से ही, उत्तम ब्राह्मण उत्तम श्रमण, और उत्तम साधु होता है। शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालने वाला ही, ऋषि, मुनि, संयमी और भिक्षु है।'

ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के दो प्रधान उपाय।

शास्त्रों में, ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के, प्रधानतः दो उपाय बताये गये हैं। एक क्रिया-मार्ग और दूसरा ज्ञान मार्ग। क्रिया-मार्ग, ब्रह्मचर्य के विरोधी संस्कारों को रोकता है और इस प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा करता है। लेकिन इस मार्ग से, अब्रह्मचर्य के संस्कार निर्मूल नहीं होते। ज्ञान-मार्ग, अब्रह्मचर्य के संस्कारों को, निर्मूल कर देता है। फिर ब्रह्मचारी को, ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन स्वाभाविक एवं सरल और अब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन अस्वाभाविक एवं कठिन प्रतीत

होता है। ज्ञान-मार्ग द्वारा प्राप्त रक्षण, स्वरूप चिन्तन या आत्म विवेक से उत्पन्न हुआ होता है, इसलिये एकान्तिक और आत्यन्तिक है, कभी नाश नहीं होता। लेकिन क्रिया मार्ग द्वारा प्राप्त रक्षण, एकान्तिक या आत्यन्तिक नहीं है। क्रिया में किंचित भी ढिलाई होने से, अब्रह्मचर्य के सूक्ष्म संस्कारों का स्वरूप होना सम्भव है। यद्यपि इन दोनों उपायों में से उत्तम उपाय ज्ञान मार्ग है, फिर भी जिस ब्रह्मचारी ने, ज्ञान मार्ग को पूरी तरह अपना लिया है, उसको क्रिया मार्ग की उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है। क्योंकि क्रिया मार्ग को त्याग देने से, व्यवहार में भी धोखा हो सकता है, ब्रह्मचारी अब्रह्मचारी की पहचान भी नहीं रहती और क्रिया शून्य ज्ञान, पूर्ण तथा लाभप्रद भी नहीं है।

क्रिया मार्ग से ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा।

क्रिया-मार्ग में, बाह्य नियमों का समावेश है। क्रिया मार्ग द्वारा, ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिये, प्रश्न व्याकरण सूत्र में पाँच भावनाएँ बताई गई हैं जो इस प्रकार हैं —

१—केवल स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं को, स्त्रियों के सन्मुख या अन्यत्र न कहे।
२—स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियाँ न देखे।
३—स्त्रियों के रूप को न देखे।
४—काम भोग को बढ़ाने वाली वस्तुओं को न देखे, न कहे, न स्मरण करे।

५—कामोत्तेजक पदार्थ न खावे-पीवे।

इसी प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिए भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र में दस समाधिस्थान बताये हैं, जो संक्षिप्त में इस प्रकार हैं —

१—वैक्रिय और औदारिक शरीर धारिणी स्त्री, पशु और नपुंसक के संसर्ग वाले आसन और निवास-स्थान आदि का उपयोग नहीं करना यानि संसर्ग रहित स्थान में रहना।

२—अकेली स्त्री से बात-चीत न करना, न केवल अकेली स्त्री को कथा-वार्ता, व्याख्यान आदि सुनाना और स्त्री-कथा न करनी। यानि केवल स्त्री के रूप वेश आदि का वर्णन भी न करना।

३—स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठना और जिस आसन पर स्त्री बैठी हो, उस आसन पर स्त्री के उठने से दो घड़ी पश्चात तक न बैठना।

४—स्त्रियों के मनोहर आँख, नाक आदि का तथा दूसरे अंगोपांग का अवलोकन न करना, न उनका चिन्तन ही करना।

५—स्त्रियों के रति प्रसंग के मोहक शब्द, रति कलह के शब्द, गीत की ध्वनि, हँसी की खिलखिलाहट, क्रीडा के शब्द और विरह रुदन को पर्दे के पीछे से या दीवाल की आड से भी न सुनना।

६—पूर्व में अनुभव का हुई, आचरण का हुई या सुनी हुई रति क्रीडा, काम क्रीड़ा आदि का स्मरण भी न करना।

७—पौष्टिक खाद्य एवं पेय पदार्थों का उपयोग न करना।

८—सादा भोजन आदि भी प्रमाण से अधिक न खाना पीना।

९—शृंगार-स्नान, विलेपन, धूप, माला, विभूषा और वेश-रचना आदि न करना।

१०—कामोत्तेजक शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से बचना। सर्वविरति ब्रह्मचारी को, ऊपर कही हुई भावनाओं एवं समाधि स्थान के नियमों का पालन करना नितान्त आवश्यक है। ऐसा न करने से, सर्वविरति ब्रह्मचय व्रत में अतिचार लगता है और अतिचार लगने से व्रत दूषित हो जाता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि आँखों के सामने आये हुये रूप को या कान में पड़े हुये शब्द को देखने-सुनने से, किस प्रकार बचा जा सकता है? क्या आँख-कान आदि को बन्द रखना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि सामने आये हुए रूप को न देखना, या कान में पड़े हुए शब्द को न सुनना, यह वास्तव में अशक्य है, इसके लिये आँख-कान आदि बन्द रखने की जरूरत नहीं है। किन्तु ऐसे समय में ब्रह्मचारी को, अपने में राग द्वेष न होने देना चाहिए और वस्तु स्वरूप का तत्व चिन्तन करना चाहिए।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत का, पूर्णतया पालन तभी माना जाता है जब शरीर के साथ ही, मन और वचन पर भी संयम रक्खा जाय। केवल शरीर से ही अब्रह्मचर्य का सेवन न करना, सर्वविरति ब्रह्मचर्य नहीं

मन संयम।

हैं, किन्तु मन वचन और काय इन तीनों से अब्रह्मचर्य का सेवन न करना चाहिए। बल्कि, शरीर की अपेक्षा मन पर अधिक संयम रखने की आवश्यकता है। क्योंकि —

> मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः ।
> मन ही मनुष्य के लिये पाप-बंध या मोक्ष का कारण है।'
> बन्धाय विषयासक्तं मुक्तौ निर्विषयं मनः ।
>
> सूक्ति ।
>
> विषयासक्त मन ही पाप बन्ध का कारण है और विशुद्ध मन, मोक्ष का कारण है।'

इन्द्रियें दुर्विषयों में मन को साथ लेकर ही प्रवृत्त होती हैं। यदि मन, इन्द्रियों का साथ न दे, तो इन्द्रिय—चाहने पर भी दुर्विषयों में प्रवृत्त नहीं हो सकतीं। कदाचित् इन्द्रियों को दुर्विषयों में प्रवृत्त न होने दे, तब भी यदि मन से दुर्विषयों का चिन्तन करता है तो वह अब्रह्मचर्य का पाप उसी प्रकार बाँधता है जिस प्रकार, (शास्त्र की कथा के अनुसार) तन्दुलमच्छ, प्रकट में हिंसा न करके भी हिंसा का पाप बाँधता है। गीता में कहा है —

> कर्मेन्द्रियाणि संयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन् ।
> इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा, मिथ्याचारः स उच्यते ॥
>
> अध्याय ३ ६ ।
>
> 'कर्मेन्द्रियों को रोक कर मन से विषयों का चिन्तन करने वाला मूढात्मा, मिथ्याचारी (पाखण्डी) कहलाता है।'

आत्मा के विनाश का कारण बताते हुए, गीता में कहा है -

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

अध्याय २ ॥

विषयों का ध्यान करते रहने पर, विषयों से स्नेह हो जाता है और फिर उनके पाने की इच्छा—काम की उत्पत्ति होती है इस काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अज्ञान उत्पन्न होता है अज्ञान से स्मृति नष्ट होती है स्मृति नष्ट होने से बुद्धि भ्रष्ट होती है और बुद्धि भ्रष्ट होने पर सर्वनाश हो जाता है।'

इस प्रकार, आत्मा के पतन का कारण, मन में विषयों का ध्यान करना—विषयों का चिन्तन करना ही ठहरता है। इसलिए ब्रह्मचारी को, मन पर संयम रखने की विशेष आवश्यकता है।

मन को किसी भी समय कार्य से खाली रखना, ब्रह्मचर्य व्रत को जोखम में डालना है। मन को जब भी कोई कार्य न होगा, यह तभी बुरे विचार करने लगेगा। बुरे विचार ही पाप का कारण हैं। संसार में कहावत है कि 'वश में किए हुए भूत को जब कोई काम नहीं बताया जाता तब वह भूत, उस वश करने वाले के रक्त-माँस को ही खा जाता है।' ठीक इसी प्रकार, जब मन को कोई काम नहीं रहता, तब वह हृदय के सद्विचारों को—मनुष्य के गुणों

ा भक्षण करने लगता है। इसलिए मन को प्रत्येक समय किसी न
केसी सद्कार्य में लगाये रखना उचित है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, अधिक भोजन करना वर्ज्य है।
जीवन के लिए जितना भोजन आवश्यक है उससे किंचित भी
अधिक भोजन, ब्रह्मचारी को न करना चाहिए। अधिक भोजन से, इन्द्रियों में
भोजन मयन
विकार उत्पन्न होता है, जो ब्रह्मचर्य का नाशक है। ब्रह्मचर्य की
रक्षा के लिए थोडा भोजन ही अच्छा है। विद्वानों का कथन है —

स्वल्पाहार सुखावह ।
थोड़ा भोजन सुखप्रद है।

इस कथन का मतलब यह हुआ, कि अधिक भोजन दुःख
प्रद है। अधिक भोजन केवल ब्रह्मचर्य के ही लिए नहीं, किन्तु
प्रत्येक दृष्टि से हानि प्रद है। चाणक्य-नीति में कहा है —

अनारोग्यमनायुष्यं, स्वर्ग्यं चाति भोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अति भोजन से अस्वस्थता बढ़ती है, आयुबल क्षीण होता है,
अनेक रोग पैदा होते हैं, पाप कर्म में प्रवृत्ति होती है और लोगों में निंदा
होती है। इसलिये अधिक भोजन करना वर्जित है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के उपाय बताते हुए प्रश्न व्याकरण सूत्र
में कहा है —

नो पाण भोयणस्स अइमायाए आहार इत्ता ।

'ब्रह्मचारी प्रमाण से अधिक भोजन पानी न खावे पिये ।'

ब्रह्मचारी को, अधिक भोजन कदापि न करना चाहिए। इसी प्रकार वह भोजन भी न करना चाहिए जो गरिष्ठ, कामोत्तेजक शक्ति-वर्द्धक और खट्टा, मीठा, चरपरा आदि स्वाद विशेष लिए हुये हो। ब्रह्मचारी हल्का, थोड़ा, निरस और रूखा भोजन ही करता है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में, ब्रह्मचर्य की जो नौ गुप्तियें बताई गई हैं, उनमें से एक गुप्ति, सरस भोजन न करने की ही है और वह इस प्रकार है —

नो पणीय रस भोई ।

ब्रह्मचारी रस प्रणीत भोजन न करे ।'

पुस्तकों के अनुसार, बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि 'एक बार हल्का आहार करने वाला महात्मा है, दो बार सम्हल कर यानी थोड़ा २ आहार करने वाला, बुद्धिमान् और भाग्यवान है और इससे अधिक खाने वाला महा मूर्ख, अभागा और पशु का भी पशु है।'

ब्रह्मचारी को ऐसे पदार्थों का भी सेवन नहीं करना चाहि जो मादक हों। मादक-द्रव्यों से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि न होने पर समस्त दुष्कर्मों का होना सम्भव है। जैसे—चा, गाँजा भङ्ग, चरस, अफीम, शराब, तम्बाखू, बीड़ी, सिगरेट, चुरुट आदि

नशा करने वाले समस्त पदार्थों की गणना, मादक-पदार्थों या मद में है। वैद्यक ग्रंथों में कहा है —

> बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ।

जिन पदार्थों से बुद्धि नष्ट होती है, वे सब मादक पदार्थ हैं।

इसलिये ब्रह्मचारी को ऐसे पदार्थों के सेवन से भी हमेशा बचते रहना चाहिये।

शृङ्गार

ब्रह्मचारी को, शृङ्गार करना मना है। शृंगार में स्नान, दन्त धावन, तेल फुलेल का लगाना, अच्छे कपड़े और आभूषणादि पहनना है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है —

> किते अण्हाणग अदन्त धावण सेय मल जल्ल धारण मूणवय केसलोए य खम दम अचेल गखुप्पिवास

'ब्रह्मचारी इन नियमों का पालन अवश्य करे। स्नान और दन्त धावन न करे यदि पसीना हो तब भी मैल मिश्रित पसीने से युक्त शरीर रखे, मौन रहे, निरर्थक बात चीत न करे, केशों का लुंचन करे, तथा और भी जो कष्ट हों, उन्हें क्षमा सहित सहन करे, आत्मा का दमन करे और अपरवशी रहे, क्षुधा तृषा सहन करे अचेलता धारण करे, गर्मी सर्दी सहन करे, भूमि अथवा काष्ठ शय्या पर शयन करे भिक्षा के लिये गृहस्थों के घर में प्रवेश करने पर आहार प्राप्त हो या न हो सम्मान हो अथवा अपमान हो, निन्दा हो या प्रशंसा हो सभी अवस्थाओं में सम-भाव, मच्छर डाँस आदि द्वारा मिले हुए कष्टों को सहन करे. नियम

सद्गुण और विनय का आचरण करे। ऐसा करने से ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी को अन्य नियमों के साथ ही स्नान दन्त धावन आदि शृंगार न करने का नियम भी बताया गया है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी ब्रह्मचारी के लिये ऐसे ही नियम बताये हैं। जैसे —

मल स्नान सुगन्धाद्यैः स्नानं दन्त विशोधनम्।
न कुर्याद् ब्रह्मचारी च तपस्वी विधवा तथा॥

विद्यासंहिता शिवपुराण।

'मल से शुद्धि पाने के लिए या सुगन्धित द्रव्य का सेवन करके स्नान करना दातुन मंजन आदि करना, ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवा को उचित नहीं है।'

सुखशैय्या नववस्त्रं, ताम्बूलस्नानमर्दनम्।
दन्तकाष्ठसुगन्धञ्च, ब्रह्मचर्यस्यदूषणम्॥१॥

महाभारत शान्ति पर्व।

'कोमल सुख शय्या, नवीन चमकीले भड़कीले वस्त्र ताम्बूल, स्नान, सुश्रुषा, दातुन और सुगन्ध का सेवन ये सब ब्रह्मचर्य के लिये दूषण है। इनके सेवन से ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है।

वर्जयेन्मधु मांस गन्ध माल्यादि वास्वप्नांजनाभ्यञ्जन यानापानच्छत्र काम क्रोध लोभ मोह वाद्य वादन स्नान दन्त धावन हर्ष नृत्य गीत परिवाद भयानि।

गौतम स्मृति।

ब्रह्मचारी, मधु मांस मद्य, फूलमाला, दिन में शयन, अंजन उबटन सवारी, जूता, छाता काम क्रोध लोभ मोह बाजा बजाना, स्नान दातून, प्रमत्तता, नाच, गाना; निन्दा और भय को त्याग दे।

यही बात मनुस्मृति में भी कही गई है। उत्तराध्ययन सूत्र में ब्रह्मचारी के लिए विशेष रूप से कहा गया है कि —

विभूसं परिवज्जिज्जा सरीर परिमण्डन।
बंभचेर रओ भिक्खू सिंगारत्थं न धारए॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय० १६ वां

ब्रह्मचर्य में रत साधु, शरीर मण्डन अर्थात् शरीर नख, केश आदि का सस्कार करना—और शृङ्गार वस्त्रादि से शरीर को शोभित करना सर्वथा प्रकार से त्यागे।'

ब्रह्मचारी ऐसे स्थान का सेवन भी कदापि न करे—अर्थात् ऐसे स्थान पर न रहे, जहाँ स्त्रियों का निवास या आवागमन हो। प्रश्न व्याकरण सूत्र में ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों में से एक गुप्ति इसी विषय में है, जो इस प्रकार है —

निवास।

नोइत्थी पसु पंडग संसत्ताणि सिज्जा
सणाणि सेविता भवइ।

'जिस स्थान पर स्त्री, पशु, या नपुंसक रहते हों, उस स्थान पर, ब्रह्मचारी निवास न करे।'

स्त्री के साथ एकान्त में निवास करना भी ब्रह्मचर्य के लिए घातक है। एकान्त में रहने से, कुभावनाओं के उत्पन्न होने और ब्रह्मचर्य स्खलित होने का भय रहता है। चाहे कोई कितना ही दृढ़ प्रतिज्ञ क्यों न हो। एकान्त वास ब्रह्मचर्य का घातक ही है।

अध्ययन। ब्रह्मचारी को, ऐसी पुस्तकें भी कदापि न पढ़नी चाहिएँ जिनसे काम विकार की जागृति हो, मन या इन्द्रियें दुर्विषयों की ओर दौड़ें अथवा उनकी इच्छा करें। इस प्रकार का अध्ययन भी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से भ्रष्ट करने में समर्थ है। ब्रह्मचारी के लिए विशेषतः धर्म-ग्रन्थों व ब्रह्मचारियों की कथाओं का और संसार की ओर से वैराग्य उत्पन्न करने वाली, संसार की नश्वरता बतलाने वाली तथा संसार के दुर्विषयों से घृणा उत्पन्न करने वाली पुस्तकों का अध्ययन लाभ प्रद है। ऐसे अध्ययन से ब्रह्मचर्य की रक्षा में बहुत सहायता मिलती है।

सङ्ग। ब्रह्मचारी, कामी या व्यभिचारी का सङ्ग कदापि न करे। ऐसे लोगों की संगति से, कभी न कभी ब्रह्मचर्य का नष्ट होना सम्भव है। संगति का प्रभाव पड़ता ही है। विद्वानों का कथन है —

कामिनां कामिनीनाञ्च संगात्कामी भवेत्पुमान्।

सूक्ति।

कामी पुरुष और भोगवती-स्त्री के साथ रहने वाला भी, कामी बन जाता है।

इसलिये ब्रह्मचारी को ऐसी संगति से सदैव बचते रहना चाहिये, जिससे कामोत्पत्ति और ब्रह्मचर्य नष्ट होने का भय रहता है।

स्त्री परिचय

ब्रह्मचारी को, स्त्रियों का परिचय न बढ़ाने देना चाहिये, न अपने पास अधिक समय तक बैठा कर वार्तालाप ही करना चाहिये। प्रश्न व्याकरण सूत्र में, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्ति बताते हुये कहा है —

णो इत्थीणं सेवित्ता भवइ।

ब्रह्मचारी स्त्री सेवन न करे।'

णो इत्थीणं इन्द्रियाणि मणोहराइं रमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ।

'ब्रह्मचारी, स्त्रियों के मनोहर और रमणीय अंगों का अवलोकन न करे, न प्रशंसा ही करे।'

स्त्रियों के देखने से भी, ब्रह्मचर्य के लिए बड़े २ अनर्थ संभव हैं। शास्त्र में, यह बात नहीं मिलती कि मणिरथ पहले से ही दुराचारी था। मदनरेखा पर भी उसकी कुदृष्टि उसको देखने से पूर्व न थी, किन्तु उसने जब से मयणरेहा को देखा, तभी से उसकी कुदृष्टि मदनरेखा पर हुई। बस, देखने मात्र से होने वाली कुदृष्टि का परिणाम यह हुआ कि उसने मदनरेखा के लिये, अपने छोटे भाई जिसको उसने आग्रह-पूर्वक युवराज बनाया था—मार डाला और अन्त में स्वयं को भी मरना पड़ा। इसलिये ब्रह्मचारी को, न तो स्त्रियों को देखना ही चाहिए, न उनसे परिचय ही बढ़ाना चाहिये।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी ब्रह्मचारी को, स्त्रियों से परिचय बढ़ाने से रोका है। जैसे —

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमादादुत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥१॥
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥२॥

मनुस्मृति अ० २

'मैं विद्वान् या जितेन्द्रिय हूँ, ऐसा समझकर स्त्रियों के समीप न बैठना चाहिए, क्योंकि चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, देह के धर्म से काम क्रोध के वशीभूत शरीर को स्त्रियाँ कुमार्ग पर ले जाने में समर्थ हैं। इस लिये चाहे माता हो बहन हो या पुत्री हो, इनके साथ भी एकान्त स्थान में न बैठे; क्योंकि इन्द्रियों का बलवान् समूह नीति रीति से चलने वाले पुरुष को भी अपने पथ से विचलित कर देता है।'

ब्रह्मचारी को स्त्रियों से परिचय न करने का उपदेश देते हुए शास्त्र में कहा है —

हत्थपाय पलिच्छिन्नं कन्ननास विगप्पियं।
अवि वास सयं नारिं बंभयारी विवज्जए ॥

दशवैकालिक सूत्र अ० ८ व

'जिसके हाथ पाँव टूटे हों नाक कान भी कटे हुए हों और चाहे अवस्था में भी सौ वर्ष की हो ऐसी स्त्री के साथ भी ब्रह्मचारी परिचय न करे न उसके साथ एकान्त में रहे।'

ऐसी स्त्री भी, पुरुष के हृदय को और ऐसा पुरुष भी स्त्री के हृदय को, विचलित करने में समर्थ हो सकता है, अन्य स्त्री और अन्य पुरुष की तो बात ही दूसरी है। ब्रह्मचारी को स्त्रियों के परिचय से बचना ही श्रेयस्कर है। पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज भी कहा करते थे।

गढ़ के पासे डुगरी, कदियक गढ़ को भग।
साधू पासे स्त्री, या ही बड़ो कुसग॥
या ही बड़ो कुसग भग ता शील में होसी।
येंठ मारि क पास मून की पूजी खोसी॥
शीलादिक आचार क पालन से मन भागा।
माय कहे रे बालकाँ ये जोग को रोग लागा॥

इसलिये ब्रह्मचारी को, स्त्री-परिचय से ही बचना चाहिए।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत के आराधक को, स्त्रियों के प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव रखना, बहुत ही हितकारी है। धर्म से किंचित भी प्रेम करने वाले के हृदय में, माँ, बहन और लड़की के लिए कोई विकार भावना नहीं होती। हाँ, जिन्होंने मनुष्यता को ही तिलांजलि दे दी है, जिनमें से मनुष्यत्व ही निकल गया है, उनकी तो बात ही अलग है। ऐसे लोग माँ, बेटी और बहन तो क्या, पशुओं से भी दुष्कर्म करने से नहीं चूकते।

मातृ पुत्री और भगिनी भाव।

मातृ, पुत्री और भगिनी भाव, ब्रह्मचर्य की रक्षा का एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। जो स्त्रियें आयु में बड़ी हैं उनके प्रति मातृ भाव, जो समान हैं, उनके प्रति भगिनी भाव, और जो छोटी हैं उनके प्रति पुत्री भाव रखने से, हृदय में विकार उत्पन्न नहीं होता मातृ पुत्री और भगिनी भाव का क्या माहात्म्य है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

एक लखारा (लाख की चूड़ियें बनाकर बेचनेवाला) अपनी गधी पर, चूड़ियें लादे हुए चला जा रहा था। गधी धीरे चलती थी, इसलिये लखारा उसे हाँकते हुये कहता जाता था 'माँ! चल!' 'बहन चल!' 'बेटी! चल!' लखारे के इस कथन को सुन कर, मार्ग चलनेवाले लोग उससे कहने लगे कि—तू कैसा मूर्ख है! गधी को भी माँ, बहन और बेटी कह कहता है? कहीं गधी भी माँ, बहन, या बेटा हो सकती है? लोगों की बात सुनकर, लखारा कहने लगा—भाइ, यद्यपि गधी होने के कारण यह मेरी माँ, बहन या बेटा नहीं हो सकती, लेकिन स्त्रीजाति के प्रति माँ, बहन और बेटी की भावना को जन्म देनेवाला तो हो सकती है न? यदि मैं, इस गधी को मातृ पुत्री और भगिनी भाव से न देखूँगा, तो स्त्रियों के प्रति ऐसी भावना कब रख सकूँगा? मैं, लखारा हूँ। स्त्रियों को चूड़ियाँ पहनाना मेरा काम है, इसलिये बड़े बड़े घरों में मेरा प्रवेश है। नित्य ही, सुन्दर सुन्दर स्त्रियों के कोमल कोमल हाथ, चूड़ियाँ पहनाने के लिये, मेरे हाथों में आया करते हैं। यदि मैं, उनके प्रति मातृ, पुत्री और भगिनी भाव न रखूँ—किसी प्रकार की कुभावना रखूँ—तो मैं, लोग

में से अपना विश्वास भी खो दूं, तथा व्यवसाय से भी हाथ धो बैठूं। मैं, इस गधी को भी, बहन, माँ और बेटी के समान मानता हूं, तभी अन्य स्त्रियों को भी, बहन, माँ और बेटी के समान मान सकता हूं। लम्बारे की बात सुनकर, सबको चुप हो जाना पड़ा।

तात्पर्य यह, कि सब स्त्रियों के प्रति मातृ, भगिनी और पुत्री भाव रखने से, स्त्रियों के प्रति, कुभावनायें उत्पन्न ही नहीं होती। इस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा होती है।

वीर्य एक ऐसी वस्तु है, जिसे, बिना उपाय के शरीर में रोक रखना—पचा जाना—बहुत कठिन कार्य है। ऐसा करने के लिये, उपायों की आवश्यकता है। इस प्रकार के उपायों में से एक उपाय, उपवास या तपस्या भी है। जैनशास्त्रों में, तप का प्रतिपादन इसलिए भी विशेष रूप से किया गया है, कि उससे ब्रह्मचर्यव्रत सुरक्षित रहता है और ब्रह्मचर्य के बाधक दोष नष्ट हो जाते हैं। श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में आहार-त्याग करने के छः कारणों में एक कारण यह बतलाया है कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये आहार छोड़ दें। इस बात का समर्थन, अन्य ग्रन्थकार भी करते हैं। जैसे—

उपवास

आहारान पचति शिखी दोषान आहार वर्जित ।

आयुर्वेद ।

'आहार को, अग्नि पचाती है और दोषों को, उपवास पचाते हैं

ध्यान। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, ध्यान की भी आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा का ध्यान भी एक प्रधान साधन है। ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए, प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा है—

झाण वर कवाड सुकय मज्झप्प दिण्णफलिहं

ध्यान ही ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करने वाला कपाट है।'

मनुस्मृति में कहा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

'जिस प्रकार अग्नि में डालकर तपाने से धातुओं का मल भस्म हो जाता है, उसी प्रकार, प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं।'

ब्रह्मचारी का जीवन, अनियमित भी न होना चाहिए। अनियमित जीवन, प्रत्येक दृष्टि से हानिप्रद है। अतः ब्रह्मचारी का जीवन

नियमितता। नियमित हो। उसके प्रत्येक कार्य, नियमित रूप से ठीक समय पर हों। कोई समय, व्यर्थ या खाली न जावे, न कोई कार्य, असमय पर ही हो। अनियमितता से बचे रहने पर ही ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य स्थिर रहता है।

ब्रह्मचारी के लिये सब से बड़ा नियम ईश्वर प्रार्थना है, नियमित रूप से प्रातः सायं ईश्वर की प्रार्थना, ब्रह्मचर्य की रक्षा

ईश्वर प्रार्थना।

एक अच्छा साधन है। ईश्वर प्रार्थनादि नियमों का पालन करने से, ब्रह्मचर्य के साथ ही दूसरे कार्यों की सफलता में भी सहायता मिलती है।

इन नियमों के सिवा और भी बहुत से छोटे-छोटे नियम ऐसे हैं जिनका पालन करने पर तो ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और पालन न करने पर ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है। जैसे कि ब्रह्मचारी को ओढ़ना बिछौना नरम न रखना, कड़ा रखना, मुलायम या चटक मटक वाले वस्त्र न पहनना, स्त्रियों के चित्र न देखना और न रखना आदि। इस प्रकार के समस्त नियमों का पालन करने वाला ही, अपने व्रत को निर्दोष रूप में पाल सकता है।

---

(६)

स्त्रियां और ब्रह्मचर्य।

किन्नाप्नोति रमा रूपा ब्रह्मचर्य तपस्विनी।

'उस लक्ष्मी रूपी स्त्री के लिए कुछ भी कठिन नहीं है, जो ब्रह्मचर्य तप की तपस्विनी है।'

कुछ लोगों का कथन है कि स्त्रियों को, पूर्ण ब्रह्मचर्य न पालना चाहिये, लेकिन जैन शास्त्र इस कथन के समर्थक नहीं, अपितु

जैन शास्त्रों में पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन के लिये स्त्रियों का स्थान।

विरोधी हैं। जैन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जै
उपदेश पुरुषों के लिये है, वैसा ही उप
स्त्रियों के लिये भी है। जैन शास्त्रों का
उपदेश आदर्श-रहित नहीं किन्तु आद
सहित है। भगवान ऋषभदेव की, ब्राह्मी और सुन्दरी नाम्नी कन्या
ने, कर्म भूमि के प्रारम्भिक युग में ही पूर्ण ब्रह्मचारिणी रह
स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य पालन करने का आदर्श रख दिया थ
उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान मल्लिनाथ, स्त्री ही थे। स्त्री होते हुए
उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था और तीर्थङ्कर-पद प्र
किया था। इसी प्रकार राजिमती, चन्दनबाला आदि सतियों
भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया है। सारांश यह कि 'स्त्र
ब्रह्मचर्य न पालें, ब्रह्मचारिणी न हों' यह बात, जैन शास्त्रों के सम
विरुद्ध है। जैन शास्त्र इस विषय में स्त्री और पुरुष दोनों
समान अधिकारी बताते हैं। आयु, देश, काल आदि किसी प्रक
का प्रतिबन्ध नहीं लगाते। वे कहते हैं कि चाहे स्त्री हो या पुर
ब्रह्मचर्य का पालन जो भी करे, इससे होने वाले लाभ को वही प्र
कर सकता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य का पालन भी अधि
सुचारू-रूप से कर सकती हैं। जैन शास्त्रों में ऐसे कई उदाह

स्त्रियों की ब्रह्मचर्य में दृढ़ता।

मिलते हैं जिनमें स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य से पति
होते हुये पुरुषों को ब्रह्मचर्य पर स्थिर कि
जैसे कि—सती राजमती ने रथनेमि को

कोशा नाम्नी श्राविका ने, स्थूलभद्रजी के एक गुरु भाई को ब्रह्मचर्य से पतित होने से बचाया था।

तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य, पुरुषों ही के लिये नहीं है किन्तु स्त्रियों के लिये भी वैसा ही आवश्यक है। स्त्रियाँ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकती हैं।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत की आराधना के लिये, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है जो पुरुषों के लिए पिछले प्रकरण में बताये गये हैं। हाँ, यह अन्तर अवश्य होगा कि जहाँ ब्रह्मचारी के लिये स्त्रियों का साथ और उनकी प्रशंसा आदि वर्ज्य है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों का साथ, उनकी कथा आदि सर्व वर्ज्य समझना चाहिए और जहाँ ब्रह्मचारी को स्त्रियों से बचने का नियम बताया गया है, वहाँ ब्रह्मचारिणी को पुरुषों से भी बचने का नियम समझना चाहिये। शेष सब नियम स्त्रियों के लिए भी वैसे ही हैं जैसे पुरुषों के लिए हैं और जो बताये जा चुके हैं।



(७)

विवाह !

—※—

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादि वलितान् ।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूम्
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

भर्तृ० वैराग्यशतक ।

'जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता है तब वह शीतल, सुगन्धित और निर्मल जल पीकर, तृषा के दुःख से मुक्त होता है, जब भूख सताती है तब शाकादि के साथ भोजन करके क्षुधा का कष्ट मिटाता है ऐसे ही जब कामाग्नि प्रचण्ड होती है तब सुन्दर स्त्री को हृदय से लगाता है, इस प्रकार जल भोजन और स्त्री एक एक रोग की दवा है लेकिन लोगों ने उलटा ही मान रखा है। अर्थात् लोग इन दवाओं में भी सुख मानते हैं।

मनुष्य जन्म उत्तम क्यों है ?

मनुष्य शरीर, सब शरीरों से उत्तम क्यों माना जाता है, इसके लिये कहा है —

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणां ।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समाना ॥

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन की दृष्टि से तो मनुष्य और पशु समान ही हैं, लेकिन मनुष्य में धर्म है इसी से वह पशु की अपेक्षा बड़ा है, अन्यथा धर्महीन मनुष्य पशु के ही समान है।'

मनुष्य में धर्म है, इसीलिए वह सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है, लेकिन आहारादि में ही धर्म नहीं है। यदि आहारादि में ही धर्म होता तो उक्त श्लोक में धर्म को आहारादि से भिन्न न बताया जाता। इस श्लोक में, धर्म को आहारादि से भिन्न बतलाया गया है, इसलिये यह देखना है कि धर्म क्या है, जिसके होने पर मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम माना जाता है।

इस लोक और परलोक में जिसके द्वारा उन्नति हो, उसीका नाम धर्म है। भगवान महावीर ने धर्म के सूत्र धर्म और चारित्र धर्म ये दो भेद बताये हैं। इनका विवेचन यहां आवश्यक नहीं है। यहां तो केवल यह बताना है कि भगवान ने चारित्र धर्म की आराधना के लिये जो पाँच व्रत बताये हैं उनमें से चौथा व्रत ब्रह्मचर्य है। अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करना धर्म है। इसका पालन करने पर ही मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम हो सकता है। भोग भोगने, अब्रह्मचर्य का सेवन करने के कारण, मनुष्य सब प्राणियों में उत्तम नहीं कहला सकता।

आत्मा, जब निगोद में पड़ा था तब इसे यह भी मालूम नहीं था कि मैं जीव हूँ। पुण्य के बढ़ने से यह आत्मा, निगोद से निकल कर, अनेक योनियों को भोगता हुआ, अनेक प्रकार के कष्ट

सहता हुआ इस मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आत्मा ने पूर्व भोगी हुई अनेक योनियों में दुर्विषय भोग को ही इष्ट मान रखा था, इसलिए इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे उन भोगों की ओर से तृप्ति ही हुई, न यह बार बार के जन्म मरण से ही मुक्त हुआ। उस समय तो इसको ऐसा ज्ञान न था—इसकी बुद्धि विकसित न थी, यह धर्म को जानता ही न था। लेकिन यदि मनुष्य जन्म पाकर भी, यह पशु-योनि में भोगे जाने वाले भोगों का भोगे, उन्हीं में सुख माने, जन्म मरण से मुक्त होने का उपाय न करे तो इसकी अधिक भूल—अज्ञानता या मूर्खता और क्या होगी? जो भोग पशु शरीर में भी भोगे जा सकते हैं उनके भोगने में इस मनुष्य शरीर को नष्ट करना कौनसी बुद्धिमानी है? केवल चने आने में आ सकने वाली मिठाई के बदले में, चिन्तामणि ऐसा रत्न दे देने की मूर्खता के समान क्षणिक, अस्थायी और हर प्रकार से हानि करने वाले दुर्विषय भोग में, उत्कृष्ट मनुष्य-जन्म खो देने की मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी? मनुष्य शरीर दुर्विषय भोग के लिये नहीं है, किन्तु उन्हें त्यागने के लिये है। मनुष्य-जन्म प्राप्त होने का वास्तविक लाभ तभी है जब, दुर्विषय भोग त्याग कर ब्रह्मचर्य रूपी तप का अनुष्ठान किया जावे। भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को उपदेश देते हुये कहा था —

नाय देहो देह भाजांनृलोके,
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये

तपो दिव्य पुत्रकायेन सत्व,
शुद्ध्येयस्माद्ब्रह्म सौख्यत्वनन्तम् ॥

भागवत ५ वाँ स्कंध ५ वाँ अध्याय।

"हे पुत्रो! देहधारियों का यह शरीर दुःखदायी विषय भोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषय भोग तो, विष्ठा खाने वाले सूकरादि जीवों को भी मिल जाता है अतएव, मैं कहता हूँ कि यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अनन्त ब्रह्म सुख प्राप्त होता है।"

गृहस्थ ब्रह्मचर्य

यद्यपि, मनुष्य जन्म की सफलता और पूर्णतया धर्माचरण, तो सर्वविरति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लेकिन, सर्वविरति ब्रह्मचर्य जिसे चतुर्थ महाव्रत कहा गया है वह तो गृह-संसार का त्याग ही स्वीकार कर सकता है। गृह-संसार में रहते हुए, ऐसा न कर सकने वाले पुरुष स्त्री को, कम से कम क्रमशः २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, अखण्ड ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिये। इस अवस्था तक अखण्ड ब्रह्मचर्य न पालना, अपने आपको, अवनति, रोग, एवं मृत्यु के मुख में धकेलना है। स्मृतिकार कहते हैं—

चतुर्थमायुषो भाग मुषित्वाऽऽद्यं गुरौ कुले।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशत् ॥

महत्ता हुआ इस मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर सका है। आ
पूर्व भोगी हुई अनेक योनियों में दुर्विषय भोग को ही इष्ट म
था, इसलिए इसने उन्हें खूब भोगा, लेकिन न तो इसे उन
ओर से तृप्ति ही हुई, न यह बार बार के जन्म मरण से
हुआ। उस समय तो इसको ऐसा ज्ञान न था—इस
विकसित न थी, यह धर्म को जानता ही न था। लेकिन य
जन्म पाकर भी, यह पशु-योनि में भोगे जाने वाले भ
भोगे, उन्हीं में सुख माने, जन्म-मरण से मुक्त होने का
कर तो इसकी अधिक भूल—अज्ञानता या मूर्खता और
जो भोग पशु शरीर में भी भोगे जा सकते हैं उन
इस मनुष्य शरीर को नष्ट करना कौनसी बुद्धिमानी है?
ध्यान में आ सकने वाली मिठाई के बदले में, चिन्तामणि
दे देने की मूर्खता के समान क्षणिक, अस्थायी और ह
हानि करने वाले दुर्विषय भोग में, उत्कृष्ट मनुष्य-जन्म
मूर्खता से अधिक मूर्खता और क्या होगी? मनुष्य शरी
भोग के लिये नहीं है, किन्तु उन्हें त्यागने के लिये है।
प्राप्त होने का वास्तविक लाभ तभी है जब, दुर्विषय भोग
ब्रह्मचर्य रूपी तप का अनुष्ठान किया जावे। भगवान
अपने पुत्रों को उपदेश देते हुये कहा था —

नायं देहो देह भाजांनृलोके,
कष्टान् कामानर्हते

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्वं,
शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्म सौख्यं त्वनन्तम् ॥

भागवत ५ वां स्कंध ५ वां अध्याय ।

हे पुत्रो ! देहधारियों का यह शरीर दुःखदायी विषय भोग के योग्य नहीं है, क्योंकि दुःखदायी विषय भोग तो, विष्ठा खाने वाले नारकीय जीवों को भी मिल जाता है अतएव, मैं कहता हूँ कि यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है जिससे अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और अनन्त ब्रह्म सुख प्राप्त होता है।

आवश्यक ब्रह्मचर्य

यद्यपि, मनुष्य जन्म की सफलता और पूर्णतया धर्माचरण, तो सर्वविरति ब्रह्मचर्य के पालन में ही है, लेकिन, सर्वविरति ब्रह्मचर्य जिसे चतुर्थ महाव्रत कहा गया है वह तो गृह-संसार का त्यागी ही स्वीकार कर सकता है। गृह-संसार में रहते हुए, ऐसा न कर सकने वाले पुरुष स्त्री को, कम से कम क्रमशः २५ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, अखण्ड ब्रह्मचर्य पालना ही चाहिये। इस अवस्था तक अखण्ड ब्रह्मचर्य न पालना, अपने आपको, अवनति, रोग, एवं मृत्यु के कुण्ड में धकेलना है। स्मृतिकार कहते हैं—

चतुर्थमायुषो भाग मुषित्वाऽऽद्य गुरोः कुले ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

'पूर्णायु का चौथा भाग यानी १०० वर्ष में से २५ वर्ष गुरुकुल में रहकर, अविप्लुत रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करे और फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।'

इस प्रकार, कम से कम २४ और १६ वर्ष की अवस्था तक तो, प्रत्येक पुरुष-स्त्री को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए।

२५ और १६ वर्ष की अवस्था होने पर ही, पुरुष और स्त्री, इस बात के निर्णय पर पहुँचते हैं, कि हम, आजन्म ब्रह्मचर्य पाल सकते हैं या नहीं? अर्थात्, पूर्ण अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने की शक्ति, हममें है या नहीं! जो लोग ऐसा करने में समर्थ होते हैं, वे तो, पूर्ण ब्रह्मचर्य की ही आराधना करते हैं—विवाह के झंझटों में नहीं फँसते। जैसे भीष्म पितामह—लेकिन, जो लोग, संसार में रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन में अपने-आप को असमर्थ देखते हैं, वे विवाह कर लेते हैं, किन्तु दुराचार में प्रवृत्त नहीं होते। यद्यपि जैन [illegible] में, पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान पाया जाता है, विवाह [illegible] नहीं पाया जाता लेकिन, नीतिकारों ने, पूर्ण ब्रह्म[illegible] लोगों के लिए विवाह का विधान और [illegible] में प्रवृत्त होने का अत्यन्त निषेध किया है। [illegible] विवाह नहीं करना है, तो ब्रह्मचर्य पाले, [illegible] जैन शास्त्रों में भी, ऐसा विधान

विवाह कौन करते हैं?

पहीं नहीं मिलता, कि जो लोग सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालन में असमर्थ हैं, उन्हें, विवाह न करने देकर, दुराचार में प्रवृत्त होने दिया जावे। हाँ, जैनशास्त्रों में, दुराचार प्रवृत्ति का निषेध अवश्य है। वे, (विवाह न करके—या विवाह करके) पर-स्त्री-गमन करने वाले को तो दुराचारी कहते हैं, लेकिन विवाह करनेवाले को, दुराचारी नहीं कहते।

जो लोग, नैष्ठिक (यावज्जीवन) ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ हैं, दुनियाँ में, इन्द्रिय और मन को प्रवृत्त न होने देने की शक्ति रखते हैं, उनके लिए तो, विवाह न करना ही श्रेयस्कर है, लेकिन जो लोग ऐसा करने में असमर्थ हैं, और जिन्हें विवाह न करने पर, दुराचार में प्रवृत्ति होने का भय है, नीतिज्ञों के समीप, ऐसे लोगों का विवाह करना, दुराचार में प्रवृत्त होने की अपेक्षा बुरा नहीं, किन्तु अच्छा माना जाता है। हाँ, विवाह को माना [illegible] के रूप में। पाश्चात्य विद्वान मन्न फ्रान्सिस कहता है कि 'कामवासना की दवा के रूप में विवाह बड़ी अच्छी वस्तु है [illegible] वह कड़ी है, इसलिये यदि उसका व्यवहार बहुत [illegible] किया जावे तो खतरनाक भी है।' इस प्रकरण के [illegible] श्लोक दिया गया है, उसमें भर्तृहरि ने भी [illegible]
इस प्रकार विवाह, कामवासना रूपी रोग की [illegible] किसी सुख का साधन नहीं माना जा सकता [illegible] आवश्यकता उन्हीं लोगों को होती है [illegible]

से नहीं मिटा सकते। अर्थात् विवाह केवल वही लोग करते हैं जो कामवासना का, विवेक द्वारा दमन करने में असमर्थ हैं।

कामवासना-रूपी रोग को, विवेक रूपी औषधि से, दबाया जा सकता है। जिनमें इस औषधि के सद्भाव का अभाव या इसकी कमी है, अथवा पूर्ण विवेकी होते हुये भी पुण्य फलों की निर्जरा करना जिनके लिये आवश्यक है और जो निकाचित बन्ध में पड़े हुये हैं, वे ही विवाह करते हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है, कि 'कामवासना इतनी प्रबल नहीं होती कि जिसका विवेक या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। विषयेच्छा भी, नींद और भूख के समान कोई वस्तु नहीं है, जिसकी तृप्ति अनिवार्य हो।' तात्पर्य यह कि कामवासना का दमन विवेक द्वारा सद्ज्ञान एवं भावना के बल से किया जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है।

विवाह सब के लिये आवश्यक नहीं है।

कभी कोई कह कि 'प्रजोत्पत्ति की दृष्टि से विवाह करना । यदि सब लोग विवाह न करके ब्रह्मचारी होने लगें तो । हो ।' ऐसे लोगों को यह उत्तर निर्मूल है। अनादि होने के लोग ब्रह्मचर्य का

क्यों? यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने से, संसार शून्य भी हो जावे तो इसमें किसी की क्या हानि है? यदि प्रजोत्पत्ति न भी हुई या संसार का अन्त भी हो गया तब भी हमें क्या होगा? तुम्हें तो केवल यह देखना चाहिये कि हमारा उद्धार, विवाह करने-प्रजा या मनुष्य-संसार बढ़ने से होता है, या ब्रह्मचर्य पालन करने से? इस विषय में गान्धीजी लिखते हैं—'आदर्श ब्रह्मचारी को, कामेच्छा या सन्तानेच्छा से कभी जूझना नहीं पड़ता, ऐसी इच्छा उसे होती ही नहीं।' महाभारत के अनुसार, भीष्मपितामह ने भी यही कहा था कि 'ब्रह्मचारी को संसार या सन्तान की इच्छा नहीं होती, न इनकी उत्पत्ति या वृद्धि के लिए वह अपने ब्रह्मचर्य को ही नष्ट कर सकता है।' इस प्रकार सब लोगों के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हैं अथवा जिन्हें पुण्य फल की लिप्सा करनी है, वे ही लोग विवाह करते हैं।

ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर अविवाहित रहने से हानि।

आजकल, पाश्चात्य देशों के बहुत से स्त्री पुरुषों में, ये विचार फैल रहे हैं, कि विवाह करने स्वतन्त्रता खोने, किसी एक के होकर रहने और बालक बालिका आदि के पालन पोषण तथा स्त्री आदि के स्थायी व्यय में पड़ने की अपेक्षा यही अच्छा है कि थोड़ी देर के लिए किसी स्त्री या पुरुष से सम्बन्ध कर लिया जावे और कामवासना पूरी करके, उसे त्याग दिया जावे।

से नहीं मिटा सकते। अर्थात् विवाह केवल वही लोग करते हैं जो कामवासना का, विवेक द्वारा दमन करने में असमर्थ हैं।

कामवासना रूपी रोग को, विवेक-रूपी औषधि से, दबाया जा सकता है। जिनमें इस औषधि के सद्भाव का अभाव या इसकी कमी है, अथवा पूर्ण विवेकी होते हुये भी पुण्य कर्मों की निर्जरा करना जिनके लिये आवश्यक है और जो निकाचित बन्ध में पड़े हुये हैं, वे ही विवाह करते हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है, कि 'कामवासना इतनी प्रबल नहीं होती कि जिसका विचार या नैतिक बल से पूर्णतया दमन न किया जा सके। विषयेच्छा भी, नींद और भूख के समान ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसकी पूर्ति अनिवार्य हो।' तात्पर्य यह कि कामवासना का दमन विवेक द्वारा सद्ज्ञान एवं भावना के बल से किया जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के लिये विवाह करना आवश्यक नहीं है।

विवाह सब के लिये आवश्यक नहीं है।

कभी कोई कहे कि 'प्रजोत्पत्ति की दृष्टि से विवाह करना आवश्यक है। यदि सब लोग विवाह न करके ब्रह्मचारी होने लगें तो फिर संसार का ही अन्त हो जावेगा।' ऐसे लोगों को यह उत्तर दिया जाता है कि इस प्रकार की शंका निर्मूल है। अनादि होने के कारण संसार का अन्त नहीं हो सकता, न सभी लोग ब्रह्मचर्य का पालन ही कर सकते हैं। कभी थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो तो प्रजोत्पत्ति और संसार की तुम्हें इतनी चिन्ता

क्यों? यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने से, संसार शून्य भी हो जाय तो इसमें किसी की क्या हानि है? यदि प्रजोत्पत्ति न भी हुई या संसार का अन्त भी हो गया तब भी हर्ज क्या होगा? तुम्हें तो केवल यह देखना चाहिये कि हमारा उद्धार, विवाह करने-प्रजा या मनुष्य-संसार बढ़ने से होता है, या ब्रह्मचर्य पालन करने से? इस विषय में गान्धीजी लिखते हैं—'आदर्श ब्रह्मचारी को, काम-इच्छा या सन्तानेच्छा से कभी जूझना नहीं पड़ता, ऐसी इच्छा उसे होती ही नहीं।' महाभारत के अनुसार, भीष्मपितामह ने भी यही कहा था कि 'ब्रह्मचारी को संसार या सन्तान की इच्छा नहीं होती, व इनकी उत्पत्ति या वृद्धि के लिए वह अपने ब्रह्मचर्य का [illegible] सकता है।' इस प्रकार सब लोगों के लिए विवाह करना आवश्यक नहीं है, किन्तु जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हैं अथवा जिन्हें पुण्य फल भी निर्जरा करना है, वे भी [illegible] करते हैं।

ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर अविवाहित रहने से हानि।

आजकल, पाश्चात्य देशों के बहुत से लोगों में [illegible] विचार फैल रहे हैं, कि विवाह करके स्वतन्त्रता [illegible] होकर रहने और [illegible] पालन-पोषण तथा [illegible] में पड़ने की [illegible] देर के लिए किसी [illegible] कर लिया जाने और कामवासना पूरी [illegible] दिया जावे

ऐसे लोग सोचते हैं कि 'विषय भोग चाहे स्व-स्त्री तथा स्व पति से किया जावे, या पर स्त्री तथा पर पुरुष से किया जावे, स्व-वीर्य नष्ट होने की दृष्टि से तो दोनों समान ही हैं। बल्कि विवाहित जीवन में इस दृष्टि से और अधिक हानि है। क्योंकि स्व-स्त्री या स्वपति के साथ तो थोड़ी इच्छा होने पर भी दुर्विषय भोग करते हैं, लेकिन पर स्त्री या पर पुरुष के साथ तो दुर्विषय तभी भोगेंगे जब कामेच्छा बहुत प्रबल हो जावेगी और रोकने से न रुक सकेगी।'

इस प्रकार की युक्तियों द्वारा पाश्चात्य देशों में बहुत से लोग विवाहित जीवन की जिम्मेदारियों से बचने के लिए और स्वच्छन्द रहने के लिये ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर भी अविवाहित रहना अच्छा समझते हैं। भारत के कुछ लोग भी ऐसे ही विचारों के समर्थक हैं और पाश्चात्य लोगों की युक्तियों के साथ ही, यह दलील और पेश करते हैं कि स्व स्त्री तथा स्व पति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है और पर स्त्री तथा पर पति के साथ मैथुन करने में भी पाप होता है। फिर विवाह क्या किया जावे? बल्कि विवाह करने में अधिक पाप होता है। क्योंकि विवाह-समय में भी आरम्भ समारम्भ होता है तथा विवाह के पश्चात् भी स्त्री को भोजन, वस्त्र आदि देने में और सन्तान के पालन पोषण, विवाह आदि में आरम्भ-समारम्भ होता है। इस तरह आरम्भ समारम्भ का पाप, परम्परा पर चलता ही जाता है। इसलिए पर स्त्री से मैथुन करने की अपेक्षा विवाह करने में अधिक पाप है।' इत्यादि कुतर्क पैदा करते हैं।

इस प्रकार के विचार वाले लोग, ब्रह्मचर्य के महत्त्व से तो अनभिज्ञ हैं ही, लेकिन विवाह के महत्त्व को भी नहीं समझ पाये हैं। वे समझते हैं कि विवाह केवल इन्द्रिय भोग के लिए ही है, इससे अधिक विवाह का कोई मूल्य ही नहीं है। अपनी इस समझ पर वे गम्भीरता से विचार नहीं करते। थोड़ी देर के लिए विवाह केवल विषय भोग के लिये ही मान लिया जावे, तब भी यदि विवाह प्रथा न होती, तो संसार में अशान्ति का साम्राज्य छा जाता। मनुष्य स्वभावतः अपने ऐसे प्रेमी के प्रेम में किसी दूसरे का साझी होना नहीं सह सकता, इसलिए एक ही पुरुष को चाहने वाली अनेक स्त्रियाँ, या एक ही स्त्री को चाहने वाले अनेक पुरुष, आपस में लड़-लड़ कर मर जाते हैं। आज भी सुना जाता है कि एक वेश्या के पीछे अनेक नर-हत्या होती हैं। यदि सभी वेश्या किसी एक की होती तो सम्भवतः ऐसी हिंसा का समय न आता। इसी प्रकार विवाह प्रथा न होने पर, मनुष्य उस दाम्पत्य प्रेम से सर्वथा रहित रह जाता, जो विवाहित पति पत्नी में हुआ करता है। विवाह की प्रथा का स्थान यदि नैमित्तिक सम्बन्ध को ही प्राप्त होता, तो एक-दूसरे पर दूसरे से ... तक प्रेम करते, एक-दूसरे की ... परवाह करते, जब तक कि विषयभोग नहीं भोगा जा चुका है तब तक वह विषयभोग भोगने के लिये लालायित है। ... भोग चुकने पर, या इस योग्य न रहने पर, ... इसी प्रकार उपेक्षा करते, जिस प्रकार वेश्या ... और जार-पति की वेश्या उपेक्षा करता है। ...

और मनुष्य-मात्र के स्वच्छन्द हो जाने पर सहानुभूति, दया और प्रेम का भी सद्भाव न रहता। स्त्री-पुरुष अपने आप को उस समय तक ही सुखी मानते रहते हैं, जब तक कि उनमें विषयभोग भोगने की शक्ति है। लेकिन इस शक्ति के न रहने पर जीवन दुःखमय, सहाराहीन एवं अत्याचार पूर्ण होता है। क्योंकि संसार में जनन-क्रिया (सन्तान प्रसव) का प्रेम, दया, सहानुभूति, अहिंसा आदि के प्रचार का ही बहुत भेद है। विवाह प्रथा न होने पर, सन्तान की जवाबदारी से जिस प्रकार पुरुष बचना चाहते उसी प्रकार स्त्रियाँ भी बचना चाहतीं। परिणामतः या तो भ्रूण हत्या होती या दाब दिया होता, या सन्तान निग्रह के कृत्रिम उपायों से काम लिया जाता और धीरे धीरे जनन क्रिया के साथ ही दया, प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति आदि का भी लोप हो जाता और संसार के प्रकाश का भी।

विवाह प्रथा का स्थान यदि स्त्री पुरुष की स्वच्छन्दता को प्राप्त होता, तो मनुष्यों का सांसारिक-जीवन, नीरस एवं निरुद्देश्य हो जाता। उस समय अधिक से अधिक उद्देश्य, अच्छी स्त्री या अच्छे पुरुष से काम भोग भोगना ही होता और इस उद्देश्य के साधक कारणों को ही, प्रोत्साहन दिया जाता। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आदि सिद्धान्त, इस उद्देश्य के बाधक माने जाते, इसलिए इन्हें समूल नष्ट किया जाता, जिससे संसार में अशान्ति हो जाती और हाहाकार मच जाता। तात्पर्य यह, कि यदि विवाह को केवल विषय भोग के लिए ही माना जावे, तब भी नैतिक-सम्बन्ध की प्रथा होने पर, सांसारिक-जीवन शान्तिपूर्वक न बीत सकता।

वास्तव में, विवाह दुर्विषय भोग के लिए नहीं है, किन्तु ब्रह्मचर्य पालन की कमजोरी को धीरे धीरे मिटाकर, ब्रह्मचर्य पालन की पूर्ण क्षमता प्राप्त करने के लिए ही है। यदि प्रतिक्षण बढ़ने वाली दुर्विषय-भोग की लालसा को, बिना विवाह किये ही-विवेक

विवाह विषय भोग के लिए नहीं है।

से-दबाने की शक्ति हो, तो विवाह करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। इस शक्ति के अभाव में ही विवाह किया जाता है। जिस प्रकार यदि आग न लगने दी गई या लगने पर तत्क्षण बुझा दी गई, तब तो दूसरा उपाय नहीं किया जाता और तत्क्षण न बुझा सकने पर– बढ़ जाने पर—उसकी सीमा करके उसे बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। इसके लिए, जिस मकान में आग लगी होती है, उस मकान से दूसरे मकानों का सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, ताकि उनमें वह फैल न सके और इस प्रकार उसे सीमित करके फिर बुझाने का प्रयत्न किया जाता है। वह आग, जो लगने के समय ही न बुझाई जा सकी थी, इस उपाय से बुझा दी जाती है, बढ़ने नहीं दी जाती। यदि पहले ही आग न लगने दी जाती या लगने के समय ही बुझा दी जाती तब तो इस सीमान्तर्गत घर की भी हानि न होती। लेकिन ऐसा न कर सकने पर, यदि आग को सीमित न कर दिया जाय, तो उसके द्वारा अनेक मकान भस्म हो जाते। ठीक यही दृष्टान्त विवाह के लिए भी है। यदि मनुष्य अपने में कामवासना की आग उत्पन्न ही न होने दे या उत्पन्न होने के समय ही उसे विवेक द्वारा बुझा सके, तब तो विवाह की आवश्य-

क्ता ही नहीं रहती। लेकिन न दबा सकने पर उस आग को विवाह द्वारा सीमित कर दिया जाता है और फिर उसे बुझाने की चेष्टा की जाती है। विवाह द्वारा कामेच्छा को सीमित कर देने से वह बढ़ने नहीं पाती और इस प्रकार मनुष्य असीम हानि से बच जाता है। यदि विषयेच्छा की आग उत्पन्न न होने देने या विवेक द्वारा उसे दबा सकने की क्षमता न होने पर भी उत्पन्न विषयेच्छा की पूर्ति के लिए स्वच्छन्दता से काम लिया जावे तो वह बढ़ कर भयंकर हानि पहुँचाने वाली हो जाती है। तात्पर्य यह कि विवाह दुर्विषयेच्छा को बढ़ाने के लिए नहीं है किन्तु घटाने के लिए ही है और स्वच्छन्दता से दुर्विषय भोग की इच्छा बढ़ती है, घटती नहीं। इसके सिवा विवाहित जीवन बिताने में दया, अनुकम्पा आदि उन सद्गुणों का भी बहुत कुछ विकास हो सकता है, जिनका लाभ स्वच्छन्दता में नहीं हो सकता। सन्तान को पालने पोसने की दया विवाहित जीवन में ही की जाती है। स्वच्छन्द-जीवन में तो उससे बचने सन्तान को नष्ट करने की ही इच्छा रहती है। इसलिए ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर दुराचार-पूर्ण जीवन श्लाघ्य नहीं कहला सकता। इस विषय में गांधीजी लिखते हैं—'यद्यपि महाशय ब्यूरो अखण्ड ब्रह्मचर्य को ही सर्वोत्तम मानते हैं, लेकिन सब के लिये यह शक्य नहीं है, इसलिए वैसे लोगों के लिए विवाह-बन्धन केवल आवश्यक ही नहीं वरन् कर्त्तव्य के बराबर है।' गांधीजी आगे लिखते हैं—'मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र एक पत्नी व्रत तथा एक पतिव्रत ही है।' यह तभी हो सकता है, जब स्वच्छन्दता

ा बुरा समझा जाव और उसे विवाह-बन्धन द्वारा त्यागा जाव।

जो लोग, पर-स्त्री पति और स्व-स्त्री-पति के विषय भोग म समान पाप मानते हैं, वे भी गलत रास्ते पर हैं। स्व स्त्री-पति और पर-स्त्री-पति के विषय भोग में, प्रत्येक दृष्टि से बहुत ही अन्तर है, जिसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया भी गया है। इसलिए ब्रह्मचर्य के अभाव में, अविवाहित जीवन, सर्वथा निन्द्य है।

विवाह, पुरुष और स्त्री के आजीवन साहचर्य का नाम है। यह साहचर्य, काम-वासना की दवा, और ब्रह्मचर्य के समीप पहुंचाने का साधन है। पाश्चात्य विद्वान् ब्यूरो लिखता है, कि 'विवाह करके भी, विषय विलासमय असंयम, धार्मिक और नैतिक, दोनों ही दृष्टि से असह्य अपराध है। असंयम से, वैवाहिक-जीवन का ह्रास पहुंचती है। सन्तानोत्पत्ति के सिवा और सभी प्रकार की काम-वासना-तृप्ति, दाम्पत्य प्रेम के लिए नाशक और समाज तथा व्यक्ति के लिए हानिकारक है' इस कथन द्वारा ब्यूरो ने, जैन शास्त्रों के कथन को पुष्ट किया है। जैन शास्त्र, तो इसके आधारभूत ही हैं। गांधीजी भी लिखते हैं—"विवाह बन्धन की पवित्रता को कायम रखने के लिए भोग नहीं, किन्तु आत्म-संयम ही जीवन का धर्म समझा जाना चाहिये। विवाह का उद्देश्य, दम्पत्ति के हृदयों से विकारों को दूर करके, उन्हें ईश्वर के निकट ले जाना है।'

विवाह रूपी आजीवन साहचर्य, जिसमें स्त्री-पुरुष का होता है जो स्वभाव, गुण, आयु, बल, वैभव, कुल और सौन्दर्य आदि

विवाह विषयक अधिकार

दृष्टि में रखकर, एक दूसरे को पसन्द करे। स्त्री-पुरुष में से, किसी एक की ही पसन्दगी पर विवाह नहीं होता है, किन्तु दोनों की पसन्दगी से किया हुआ विवाह ही, विवाह के अर्थ में माना जा सकता है। किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छा पर होने वाला विवाह, विवाह नहीं है। विवाह-बन्धन, स्त्री और पुरुष दोनों की स्वेच्छा पर ही निर्भर है।

विवाह सम्बन्ध स्थापित करने में, पुरुष, और स्त्री के अधिकार समान ही हैं। अर्थात्, जिस प्रकार पुरुष, स्त्री को पसन्द करना चाहता है, उसी प्रकार, स्त्री भी पुरुष को पसन्द करने की अधिकारिणी है। बल्कि, इस विषय में, स्त्रियों के अधिकार, पुरुषों से भी अधिक हैं। स्त्रियें अपने लिए वर पसन्द करने को स्वयम्वर करती थीं, ऐसे प्रमाण तो जैन शास्त्र और अन्य ग्रन्थों में स्थान स्थान पर मिलते हैं, लेकिन पुरुषों ने अपने लिए स्त्री पसन्द करने को, स्वयम्बर की ही तरह का कोई स्त्री सम्मेलन किया हो, ऐसा प्रमाण कहीं नहीं मिलता। इस प्रकार, पूर्वकाल में स्त्री की पसन्दगी को विशेषता दी जाती थी। फिर भी यह बात नहीं थी, कि जिस पुरुष को स्त्री पसन्द करे, पुरुष के लिए उसके साथ विवाह करना आवश्यक हो। स्त्री के पसन्द करने पर भी, यदि पुरुष की इच्छा उसके साथ विवाह करने की नहीं है, तो विवाह करने से इन्कार कर देना, कोई नैतिक या सामाजिक अपराध नहीं माना जाता था

जिस विवाह म, वर ने कन्या को और कया न वर को पसन्द कर लिया हो, एक दूसरे पर मुग्ध हो गये हों, किन्तु माता पिता आदि अभिभावक की स्वीकृति के बिना ही, एक न दूसरे का स्वीकार कर लिया हो एव जिसमें देश प्रचलित विवाह विधि पूरी न की गइ हो, उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं। यह विवाह, दत्तविवाह की अपेक्षा मध्यम और राक्षस विवाह की अपेक्षा अच्छा माना जाता है।

राक्षस विवाह उस कहत हैं जिसमे वर और कन्या, एक दूसरे को समान रूप से न चाहत हा, किन्तु एक ही व्यक्ति दूसरे को चाहता हा, जिसमें समानता का ध्यान न रखा गया हो, जो किसी एक की इच्छा और दूसरे की अनिच्छापूर्वक जबरदस्ती या अभिभावक की स्वार्थ-लोलुपता स हुआ हो और जिसमें देश प्रचलित उत्तम विवाह विधि को ठुकराया गया हो तथा वैवाहिक नियम भग किये गये हों। यह विवाह, उक्त दोनों विवाहा से निकृष्ट माना जाता है।

पहले बताया जा चुका है, कि कम से कम आयु का चौथा भाग, यानी २४ और १६ वर्ष, की अवस्था तक तो पुरुष स्त्री को अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिये। इसके अनुसार विवाह की अवस्था, २५ वर्ष और १६ वर्ष से कम नहीं ठहरती है। किसी भी ग्रन्थ म, विवाह वय और सहवासवय का अलग उल्लेख नहीं

विवाह योग्य अवस्था

पाया जाता, किन्तु विवाह और सहवास के एक ही साथ होने का प्रमाण मिलता है। अर्थात् वही विवाह वय और वही सहवास-वय। वैद्यक-ग्रन्थ कहते हैं—

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥

'वीर्य और रज की अपेक्षा से, २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री, परस्पर समान है, इस बात को कुशल वैद्य ही जानता है।'

इसके अनुसार विवाह की अवस्था, पुरुष की २५ वर्ष और स्त्री की १६ वर्ष ठहरती है। इस अवस्था में स्त्री और पुरुष, इस बात के निर्णय पर भी पहुंच सकते हैं कि हम पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं या नहीं? अर्थात् विवाह की आवश्यकता का अनुभव, इस अवस्था या इससे अधिक अवस्था में ही हो सकता है और जब तक आवश्यकता न जान पड़े, तब तक विवाह करना धार्मिक और नैतिक दोनों ही दृष्टि से अपराध है। जैन शास्त्र पूर्ण ब्रह्मचर्य के प्रतिपादक हैं, इसलिए उनमें विवाह विषयक विधि विधान नहीं पाया जाता, लेकिन जैनशास्त्रों में वर्णित कथाओं से भी विवाह के विषय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। जैनशास्त्रों में वर्णित कथाओं से प्रकट है कि स्त्री पुरुष का विवाह तभी हो सकता है जब वे विद्या, कला आदि सीख चुके हों और उनके शरीर पर कामवासना का प्रभाव पड़ने लगा हो। औपपातिक सूत्र में कहा है —

नवग सुत्त पडिबोहिए अठारस्स देसी भासा विसारए गीयरती गंधव्वणट कुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहु, जोही बाहुपमद्दी वियालचारी साहस्सीए अलभोग समत्थेया वियवई।

'जिसके नव अंग (२ कान २ आंख २ नाक १ जीभ १ त्वचा और १ मन काम भोग के लिये) जागृत हुए हैं अपने अपने विषय को प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होगई है, जो अठारह देश की भाषा का विशारद है, गाने में, रति क्रीड़ा में, गन्धर्व कला में और नाट्यकला में कुशल है, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध रथयुद्ध बाहुयुद्ध साहसी एवं निपुण और काम भोग भोगने में समर्थ होगया है (उसका विवाह हुआ।)'

इस पाठ से पुरुष की विवाह योग्य अवस्था पर बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। भगवती सूत्र में भी विवाह का वर्णन करते हुये पति पत्नी की समानता किन बातों में देखी जाती थी, यह बताया गया है। उसमें कहा है —

सरिसयाण सरित्तयाणं सरिव्वयाण सरिस लावन्न रूप जाव्वण गुणोववयाण सरिसयाण कुलाहिंतो आणिल्लियाण

'समान योग्यता वाली समान त्वचा वाली समान आयु वाली समान लावण्य रूप यौवन और गुणवाली समान कुल की (कन्या के साथ विवाह हुआ।)'

इसके अनुसार, विवाह समान युवावस्था में ही हो सकता है। यद्यपि उक्त प्रमाण में समान आयु भी बतलाई गई है, लेकिन

उसके साथ ही, समान यौवन भी कहा गया है और ऊपर वैद्यक ग्रन्थ का हवाला देकर, यह भी बताया जा चुका है कि २५ वर्ष का अवस्था का पुरुष तथा १६ वर्ष की अवस्था की स्त्री, समान हैं। स्थानाँग सूत्र की टीका में भी कहा गया है —

> पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सगता।
> शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिल हृदि ॥
> वीर्यवन्त सुत सूते ततो न्यूनाब्दयो पुन ।
> रोगयल्पायुरधन्या वा गर्भो भवति नैव वा ॥

५ वाँ स्थान, २ रा उद्देश।

'जिसकी अवस्था १६ वर्ष की हो चुकी है, ऐसी स्त्री, जिसकी अवस्था २० वर्ष की होचुकी है, ऐसे पुरुष से मिलने पर और रक्त, वीर्य वायु, गर्भाशय मार्ग तथा हृदय शुद्ध होने पर, वीर्यवान पुत्र उत्पन्न करती है। इससे कम अवस्था वाली स्त्री यदि कम अवस्था वाले पुरुष से समागम करे तो रोगी अल्पायुषी तथा आलसी सन्तान उत्पन्न करती है, या गर्भाधान ही नहीं होता।

यद्यपि यह कहने वाले टीकाकार ने, पुरुष की अवस्था २० वर्ष की ही बताई है, लेकिन स्त्री की अवस्था तो १६ वर्ष ही कही है। अर्थात् जितने भी प्रमाण दिये गये हैं, उन सबसे स्त्री की विवाह योग्य अवस्था १६ वर्ष से अधिक ही ठहरती है, कम नहीं। इस प्रकार पुरुष का विवाह २० या २५ वर्ष और स्त्री का विवाह १६ वर्ष की या इससे अधिक अवस्था में ही हो सकता है, कम अवस्था में

नहीं। कम अवस्था में विवाह होने पर क्या हानि होती है, यह बात आगे बताई गई है।

प्रकृति पर दृष्टिपात करने से, यह बात स्पष्ट है कि एक पुरुष, एक ही स्त्री के साथ और एक स्त्री, एक ही पुरुष के साथ विवाह कर सकती है, अधिक के साथ नहीं।

विवाह की संख्या

यद्यपि, जैन शास्त्रों में और अन्य ग्रन्थों में, अधिक विवाह की बातें बहुत मिलती हैं, लेकिन अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करना, उस समय की संस्कृति थी और उस समय के पुरुष, अधिक स्त्रियों का होना, एक विशेषता और सौभाग्य की बात मानते थे। उस समय की स्त्रियाँ भी, विशेषतः ऐसे ही पुरुष को पसन्द करती थीं, जो वैभवशाली, यशस्वी, वीर और सुन्दर हों। ऐसे पुरुष के, कितनी ही स्त्रियाँ क्यों न हों, उस समय की स्त्रियाँ, इस बात की अपेक्षा नहीं करती थीं। उस समय की संस्कृति कुछ भी रही हो और अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करने का कुछ भी कारण क्यों न रहा हो, लेकिन आजकल ऐसा करना, उचित नहीं कहा जा सकता। किसी भी व्यक्ति को, आजकल यह अधिकार नहीं है, कि किसी भी वस्तु का उपभोग, परिमाण से अधिक करे। इसके अनुसार, किसी पुरुष को अधिक स्त्रियों से और किसी स्त्री को, अधिक पुरुषों से विवाह करना उचित नहीं है।

वैद्यक ग्रन्थों पर दृष्टि देने से भी, यही ज्ञात होता है, कि एक पुरुष की काम वासना तृप्त करने के लिये एक स्त्री और एक

स्त्री की काम-वासना तृप्त करने के लिये एक पुरुष पर्याप्त है। न एक पुरुष अधिक स्त्रियों की काम-वासना शान्त कर सकता है, न एक स्त्री अधिक पुरुषों की। इसके अनुसार भी, एक पुरुष का अधिक स्त्रियों से और एक स्त्री का अधिक पुरुषों से विवाह होना अनुचित है।

पति-पत्नी पर उत्तरदायित्व।

विवाहित-जीवन, सुखपूर्वक निभाने की जिम्मेदारी, स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से है। हाँ, इसके लिए एक दूसरे का सहायक अवश्य है। फिर भी किसी ऐसे कार्य में जिसका दुष्प्रभाव अपने आप पर ही नहीं, किन्तु भावी सन्तान या दूसरे लोगों पर भी पड़ता है, उसमें सहायता करना, नैतिक, सामाजिक और धार्मिक, तीनों ही दृष्टि से अपराध है। उदाहरण के लिए, सन्तान के बालक होने (पर्याप्त आयु की न होने) पर भी, पुरुष का स्त्री को और स्त्री का पुरुष को प्रसन्न करने के लिए—उसकी इच्छा पूरी करने के लिए—मैथुन में प्रवृत्त होना। ऐसा करने से, एक छोटे बालक की माता गर्भवती हो सकती है, जिससे उस छोटे बालक का विकास मारा जाता है, उसे रोग घेर लेते हैं और गर्भ का बालक भी पुष्ट नहीं होता, किन्तु क्षीण दशा में पहुंचता जाता। इस प्रकार दोनों ही बालकों का जीवन, कष्टमय हो जाता है, इसलिए ऐसे कार्यों में दम्पत्ति का एक दूसरे की सहायता करना भी अपराध ही है।



(८)

आधुनिक-विवाह।

विवाह कब, किस अवस्था में और किन नियमों के होता है, यह थोड़े में बताया जा चुका है। अब यह देखना है आज-कल की विवाह प्रथा क्या है, विवाह के नियमादि का प किस प्रकार किया जाता है और यदि उक्त नियमों की अवहेलन जाती है तो क्या हानि होती है? यह देखने के लिये इस प्रकरण बाल विवाह और बेजोड़ विवाह, इन दो भागों में विभक्त क्रमशः दोनों पर विचार किया जाता है।

बाल विवाह।



पूर्व प्रकरण में यह बताया जा चुका है कि पुरुष और की, विवाह योग्य कम से कम अवस्था २० या २५ और १६ है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि पुरुष और स्त्री योग्य हों, तब विवाह होता है। आधुनिक समय के विवाह पूर्व-वर्णित विवाह नियमों की अवहेलना की जाती है। य पुरुष-स्त्री, विवाह-बन्धन में तभी बँध सकते हैं, जब वे आज्ञ

ब्रह्मचर्य पालने की अपनी अशक्तता का अनुभव कर लें, लेकिन आज के विवाहों में ऐसे अनुभव के लिए समय ही नहीं आने दिया जाता। जैन-समाज में ही नहीं, किन्तु भारत के अधिकाँश लोगों में पुरुष स्त्री, युवक-युवती होने के बदले, बालक-बालिका का ही विवाह किया जाता है। अधिकाँश बालक बालिका के माता पिता अपने बच्चों का विवाह ऐसी अवस्था में कर देते हैं, जब कि वे बच्चे विवाह की आवश्यकता, उसकी जवाबदारी और उसका भार समझने के लिये अयोग्य ही नहीं, किन्तु इस ओर से ही अनभिज्ञ होते हैं। यद्यपि बालक-बालिकाओं की वह अवस्था, खेलने-कूदने योग्य है, लेकिन उनके माता पिता, उन बच्चों के अन्य अन्य खेल-कूद देखने के साथ ही साथ, विवाह का खेल देखने की भी लालसा से, अपने दुधमुहे बच्चों के जीवन का सर्वनाश कर देते हैं।

अभागे भारत में, ऐसे ऐसे बालक-बालिकाओं के विवाह सुने जाते हैं, जिनकी अवस्था एक वर्ष से भी कम की होती है। अपने बालक या बालिका को दूल्हे या दुलहिन के रूप में देखने के लालायित माँ बाप, अपनी जवाबदारी और सन्तान की भावी उन्नति सब को, बाल-विवाह की अग्नि में भस्म कर देते हैं। अपने क्षणिक सुख के लिए अपने अबोध बालकों को, भोग की धधकती हुई ज्वाला में, भस्म होने के लिए छोड़ देते हैं और अपनी सन्तान को उसमें जलते देख कर भी, आप खड़े-खड़े हँसते तथा यह अवसर देखने को मिला, इसके लिए अपना अहोभाग्य मानते हैं।

आज के अधिकांश लोगों को, यह भी पता नहीं है कि हमारा विवाह कब, किस प्रकार और किस विधि से हुआ था, तथा विवाह के समय, हम कौन-कौनसी प्रतिज्ञायें करनी पड़ी थीं। उन्हें पता भी कहाँ से हो ? वे जानें भी तो कैसे ? उनका विवाह तो तब हुआ होगा, जब वे, माँ की गोद में बैठकर दूध पिया करते होंगे, नंगे शरीर, बच्चों के साथ खेला करते होंगे और विवाह तथा व... किस जानवर का नाम है, अपनी बुद्धि से यह भी न जानते होंगे। उन्हें, घोड़े पर और मण्डप के नीचे उसी प्रकार बैठा दिया गया होगा, जिस प्रकार मन्दिरों में मूर्त्तियें बैठा दी जाती हैं। जब ब्राह्मण लोग, पति-पत्नी के परस्पर के वचनों का पाठ कर रहे होंगे, तब वे, नाई और नाइन की गोदी में सो रहे होंगे। जब उन्हें भाँवर दिलाई जाती होंगी—यानी फेरे दिये जाते होंगे—तब वे, अपने पैरों से नहीं, किन्तु नाई या नाइन के पैरों से चलते रहे होंगे। ऐसी दशा में, वे, विवाह की बातें जानें और बतायें, तो कहाँ से ?

एक सज्जन कहते थे, कि मुझे एक विवाह में सम्मिलित होने का मौक़ा मिला। उस विवाह में, पति और पत्नी, दोनों ही अल्पवयस्क थे। रात के समय जब कि विवाह होता था—कन्या मण्डप में ही सो गई। लग्न के समय, कन्या की माँ ने कन्या को जगाते हुए कहा कि बेटा ! उठ, तेरा लग्न करें। लड़की की अवस्था ऐसी थी, कि वह 'लग्न' शब्द को ही न जानती थी। माँ के जगाने पर, लड़की ने माँ से कहा कि— मुझे तो नींद आती है, तू अपने

[illegible] करले ! यह कहकर लड़की फिर सो गई और स्वप्न में उसका विवाह, निद्रावस्था में ही हुआ ।

विचारने की बात है, कि जो बालक-बालिका लग्न या विवाह का नाम भी नहीं जानते, उनका विवाह कर देने पर, वे विवाह सम्बन्धी नियमों का पालन, किस प्रकार कर सकेंगे ? उन्हें जब अपने विवाह का ही पता नहीं है, तब वे विवाह विषयक प्रतिज्ञाओं को क्या जानें और उनका पालन कैसे करें ? सच्ची बात तो यह है, कि इस प्रकार की अबोध अवस्था में होने वाले विवाह को 'विवाह' कहना ही अन्याय है ।

जमाई या बहू के शौकीन माँ-बाप और नातेदार के बहू-बाराती, बालक और बालिका रूपी [illegible] को सांसारिक जीवन की गाड़ी में जोत कर और उस गाड़ी पर सवार हो जाते हैं । अर्थात्, [illegible] जीवन का बोझ, उन पर बलात् डाल देते हैं । आत्म-[illegible] भावना के वश होकर ये लोग नीति की (बाल विवाह-विरुद्ध) बातों का उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उनका उपहास करते हैं और उन्हें पददलित कर डालते हैं । यद्यपि, ये यह सब कुछ करते हैं [illegible] समझकर, हर्ष तथा प्रसन्नता के लिए और अपनी सन्तान को सुखी बनाने के लिए लेकिन वास्तव में, ऐसे लोग, जिस [illegible] को अच्छा समझते हैं, वह कभी-कभी बहुत ही बुरा, [illegible] का कारण [illegible] वही शोक का कारण और जिस [illegible] को सुखी बनाने [illegible]

मानते हैं, वहाँ सन्तान को दुःखी बनाने का उपाय भी हो जाता है। कुछ लोग, इस बात को समझते भी होंगे, लेकिन सामाजिक नियमों से विवश होकर या देखा-देखी, बाल विवाह के घोर पातकमय कार्य में प्रवृत्त होते हैं और सामाजिक नियम तथा अनुकरण करनेवाले स्वभाव के लट्ठ से, बुद्धि को—विवाह करने तक के वास्ते—दूर खदेड़ आते हैं।

नाती-पोते द्वारा अपने जीवन को सुखी मानने वाले लोग, अपनी सन्तान का बाल्यावस्था में विवाह करके ही सन्तोष नहीं करते, किन्तु विवाह के समय में ही—या कुछ ही दिन पश्चात् अयोग्य पति पत्नी को, उनका उज्ज्वल और सुखमय भविष्य, काला और दुःखमय बनाने के लिए, एक कोठरी में बन्द भी कर देते हैं। उन बालक बालिका में, प्रारम्भ से ही ऐसे संस्कार डाले जाते हैं। जिनके कारण, वे अयोग्य अवस्था में ही मैथुन से स्नेह करने लगते हैं। इस प्रकार के संस्कारों में, यदि कुछ कमी रह जाती है, तो उसकी पूर्ति, विवाह समय के गीतों से पूरी हो जाती है और वे बालक-बालिका अपने माता पिता की पोते पोती विषयक लालसा पूरी करने के लिए, दुर्विषय भोग के अथाह सागर में-अशक्त होते हुए भी-कूद पड़ते हैं।

धार्मिक दृष्टि से बाल विवाह।

कुछ लोगों ने, बालविवाह की पुष्टि के लिए, धर्म की भी ओट ले रखी है और बाल विवाह न करना, धार्मिक दृष्टि से अपराध बतलाया जाता है। लेकिन जो लोग, बाल विवाह को धार्मिक रूप देते हैं, उन्हीं के ग्रन्थों में लिखा है—

' अज्ञात 'पति' मर्यादामज्ञातपति सेवनाम् ।
नो द्वाहयेत्पिता बाला, न ज्ञातां धर्म शासनाम् ॥
हेमाद्रि ।

'पिता ऐसी कम अवस्था वाली कन्या का विवाह कदापि न करे जो पति की मर्यादा, पति की सेवा और धर्म शासन को न जानती हो ।'

इसके सिवा आवश्यक ब्रह्मचर्य के विषय में, मनुस्मृति का जो प्रमाण दिया गया है, उससे भी बाल विवाह का निषेध ही होता है। बल विवाह न करने को धार्मिक अपराध बताने वाले लोग, 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' आदि का जो एक पाठ प्रमाण रूप बताते हैं, मनुस्मृति और हेमाद्रि के उक्त प्रमाणों से, बाल विवाह का विधान करने वाला वह पाठ, प्रक्षिप्त ठहरता है। जान पड़ता है कि यह पाठ उस समय बनाया गया है जब भारत में मुसलमानों का जोर था और वे लोग स्त्रियों और विशेषत अविवाहित युवतियों का बलात् अपहरण करते थे। मुसलमानों से स्त्रियों की रक्षा करने के लिये ही, सम्भवत यह पाठ बनाया गया था, क्योंकि मुसलमान लोग, विवाहित स्त्रियों की अपेक्षा अविवाहित स्त्रियों का अपहरण अधिक करते थे। इसलिये विवाह हो जाने पर स्त्रियें इस भय से बहुत कुछ मुक्त समझी जाती थीं।

यद्यपि, मुसलमानी काल में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित अवश्य होगई थी, लेकिन आजकल की भाँति, अल्पवयस्क पति पत्नी को विवाह-समय में ही सहवास नहीं कराया जाता था।

सहवास का समय विवाह समय से भिन्न होता था। आज मुसल मानी काल की सी स्थिति न होने पर भी, बाल विवाह प्रचलित है और सहवास की भी कोई निश्चित् अवस्था नहीं है।

तात्पर्य यह है, कि बाल विवाह किसी भी धर्म के शास्त्रों में, उचित या आवश्यक नहीं बताया गया है, किन्तु ऐसे विवाहों का निषेध ही किया गया है।

बाल विवाह द्वारा, प्राचीन विवाह नियम भंग करने वालों को प्रकृति-दत्त दण्ड भी भोगना पड़ता है। प्रकृति अपने नियम भंग करने वाले के साथ, किंचित भी नर्मी का व्यवहार नहीं करती, किन्तु दण्ड देती ही है। अतः अब यह देखते हैं कि बाल विवाह के कारण प्रकृति द्वारा कौनसा दण्ड मिलता है यानी बाल विवाह से क्या २ हानि होती हैं।

बाल विवाह से हानि।

युवावस्था से पूर्व, स्त्री पुरुष का रज-वीर्य अपरिपक्व रहता है। बाल विवाह और समय से पूर्व के दाम्पत्य सहवास से अपरिपक्व रज-वीर्य नष्ट होता है। अपरिपक्व रज वीर्य नष्ट होने से शरीर की रस से लेकर मज्जा तक सभी धातुयें शिथिल हो जाती हैं, जिससे शारीरिक विकास रुक जाता है। सौन्दर्य, उत्साह, प्रसन्नता और अंगों की शक्ति घट जाती है। आयुर्बल भी कम हो जाता है। रोग शोक घेरे रहते हैं। असमय में ही दाँत गिर जाते हैं, बाल पकने लगते हैं तथा आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है।

थोड़े ही दिनों में, पुरुष नपुंसक और स्त्री स्त्रीत्व रहित हो जाती है। इस प्रकार पति पत्नी का जीवन, दुःखमय हो जाता है।

रही सन्तानोत्पत्ति की बात। इस विषय में वैद्यक ग्रंथ कहते हैं—

ऊनषोडशवर्षायाम् अप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

सुश्रुत

यदि सोलह वर्ष से कम अवस्था वाली स्त्री में २५ वर्ष से कम अवस्था वाला पुरुष गर्भाधान करे तो वह गर्भ उदर में ही विपत्ति को प्राप्त होता है। यदि उस गर्भ से सन्तान उत्पन्न भी हुई तो जीवित नहीं रहती है और यदि जीवित भी रही तो अत्यन्त दुर्बल अंग वाली होती है इसलिये कम आयु वाली स्त्री में कभी गर्भाधान न करना चाहिए।

इस प्रकार, सन्तानोत्पत्ति के लिए भी बाल विवाह घातक ही है। इंगलैंड में, मनुष्यों की औसत आयु ४१ वर्ष और बाल मरण प्रतिसहस्र ७८ है, लेकिन भारत के मनुष्यों की औसत आयु केवल २३ वर्ष और बाल-मरण प्रतिसहस्र १९४ है। इस महान् अन्तर का कारण यही है कि इङ्गलैंड में बाल विवाह की घातक प्रथा नहीं है लेकिन भारत में इस प्रथा ने, अधिकांश लोगों के हृदय में अपना घर बना लिया है। पौत्रादि के इच्छुक लोग, अपने बालक-बालिका का विवाह करते तो हैं—पोते पोती के सुख की

अभिलाषा से, लेकिन असमय में उत्पन्न सन्तान मृत्यु के मुख में जाकर, ऐसे लोगों को और विलाप करने के लिये छोड़ जाती है, अपने माता पिता को अशक्त बना जाती है तथा इस प्रकार से वह अपने दुष्कृत्यों का दण्ड दे जाती है। इङ्गलैंड की अपेक्षा, भारत के लोगों की औसत आयु कम होने के कारण, बाल विवाह द्वारा होने वाले रोग और असमय के वीर्य पात से होने वाली कमजोरी है। इसी घातक प्रथा के कारण अनेक स्त्रियां प्रसवकाल में ही परलोक को प्रस्थान कर जाती हैं, या सदा के लिए रोग ग्रस्त हो जाती हैं और फिर रोगी सन्तान उत्पन्न करके भावी सन्तति के लिए काँटे बिछा जाती हैं।

बाल विवाह के विषय में गाधीजी लिखते हैं, कि 'हिन्दुस्तान को छोड़कर और किसी भी देश में, बचपन से ही विवाह की बातें, बालकों को नहीं सुनाई जातीं। यहाँ तो, माता पिता की एक ही अभिलाषा रहती है कि लड़के का विवाह कर देना। इससे, असमय में ही बुद्धि और शरीर का ह्रास होता है। हम लोगों का जन्म भी प्राय बचपन के ब्याह माता पिता से हुआ है। हमें ऐसा लोकमत बनाने की जरूरत है, कि जिसमें बाल विवाह असम्भव हो जावे। हमारी अस्थिरता, कठिन और अविरल श्रम से अनिच्छा, शारीरिक अयोग्यता, शान से शुरु किये गये हमारे कामों का बैठ जाना और मौलिकता का अभाव इत्यादि, इन सब के मूल में, मुख्यत हमारा अत्यधिक वीर्यनाश [redacted] है।'

गांधीजी, आगे लिखते हैं कि—'जो माँ-बाप, अपने बच्चों की सगाई बचपन में ही कर देते हैं, वे उन बच्चों को बेचकर घातक बनते हैं। अपने बच्चों का लाभ देखने के बदले, वे अपना ही अन्ध स्वार्थ देखते हैं। उन्हें तो, आप बड़ा बनना है अपनी जाति बिरादरी में नाम कमाना है, लड़के का ब्याह करके तमाशा करना है। लड़के का हित देखें, तो उसका पढ़ना लिखना देखें, उसका जतन करें, उसका शरीर बनावें। घर गृहस्थी की खटपट में डाल देने से बढ़ कर, उसका दूसरा कौनसा बड़ा अहित हो सकता है?'

यदि यह कहा जावे, कि धार्मिकता की दृष्टि से विवाह तो बचपन में कर दिया जाता है, लेकिन सहवास नहीं होता है तो पहले तो यह कथन, सर्वथा नहीं तो बहुत अंश में गलत है। क्योंकि, प्रायः विवाह समय में ही सहवास होना सुना जाता है। कदाचित उस समय सहवास न होता हो, तो फिर बचपन में विवाह किस दृष्टि से किया जाता है? ऐसे विवाह का विधान तो, किसी भी धर्म के शास्त्र नहीं करते और ऐसे विवाह प्रत्यक्ष ही हानिप्रद हैं। बचपन में ब्याहे गये पति पत्नी की अवस्था में, विशेष अन्तर नहीं होता। जिस समय, कन्या युवती मानी जाती है, उस समय उसका पति, युवावस्था में पदार्पण भी नहीं कर पाता। बहू युवती है, इस लोक लाज के भय से, माता पिता की दृष्टि में, अपने अल्पवयस्क पुत्र के लिए स्त्री-सहवास आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार, उस हानि से बचा नहीं जा सकता, जो बाल विवाह से होती है। इसके

बचपन में विवाहे गये पति पत्नी, आगे चलकर कैसे-कैसे स्वभाव के होंगे, उनके रूप, गुण, शारीरिक विकास, शक्ति आदि में कैसी विषमता होगी इसे कोई नहीं जान सकता। पति-पत्नी में विषमता होने से, उनका जीवन भी क्लेशमय ही बीतता है।

बचपन में विवाह होने से, विधवाओं की भी संख्या बढ़ती जाती है। समाज में एक एक, दो-दो और चार-चार वर्ष की अवस्था वाली बाल विधवाएँ दिखाई देना, बाल विवाह का ही कुफल है। प्लेग आदि बीमारी से, बालक पति की तो मृत्यु हो जाती है और बालिका पत्नी, वैधव्य भोगने के लिए रह जाती है। जिस पति से, उस अबोध बालिका ने कोई सुख नहीं पाया है, हृदय में जिसकी स्मृति का कोई स्थान नहीं है जिसके नाम पर वैधव्य भोगने का कोई कारण नहीं है, उस पति के नाम पर, एक बालिका से वैधव्य पालन कराने का कारण, बालविवाह ही है। ऐसी बाल विधवा अपना वैधव्यावस्था किस प्रकार से व्यतीत कर सकेगी, यह देखने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता।

तात्पर्य यह, कि सहवास न होने पर भी, बालविवाह हानिप्रद ही है। विवाह हो जाने पर, बालक पति-पत्नी, ज्ञान और विद्या से भी बहुत कुछ पिछड़ रह जाते हैं, तथा एक दूसरे के स्मरण से वीर्य में दोष पैदा हो जाता है। इसलिए बाल विवाह त्याज्य है।

बेजोड़ विवाह ।

बेजोड़ विवाह भी, पूर्व की विवाह प्रथा और आज की विवाह प्रथा भिन्नता बताता है। यद्यपि विवाह में, वर और कन्या का पूर्व-वर्णित समानता देखना आवश्यक है, लेकिन आज के प्रकाश विवाहों में, इस बात का ध्यान बहुत कम रखा जाता है। ऐसे बेजोड़ विवाहों को देखकर, यदि यह कहा जावे, कि वर या कन्या के साथ नहीं, किन्तु धन-वैभव या कुल के साथ विवाह होता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। यद्यपि संसार के प्रत्येक प्राणी, अपनी समानता वाले को ही अधिक पसन्द करते हैं और विवाह के लिए तो यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है, लेकिन आजकल के बहुत से विवाह, ऊँट और बैल की जोड़ी-से होते हैं। ऐसे विवाह, विशेषतः धन या कुल के कारण ही होते हैं अर्थात् या तो धन के लोभ से बेजोड़ विवाह किया जाता है या कुल के लोभ से। बेजोड़ विवाह में, धन का लोभ दो प्रकार का होता है। एक तो यह कि लड़के या लड़की की ससुराल धनवान होगी, इसलिए बड़ी अवस्था वाली कन्या के साथ छोटी अवस्था वाले पुरुष का, या छोटी अवस्था वाली कन्या के साथ बड़ी अवस्था वाले पुरुष का विवाह कर दिया जाता है। दूसरे कन्या या वर के बदले में द्रव्य प्राप्त होगा, इसलिए भी ऐसे विवाह कर दिये जाते हैं। इसी प्रकार, कुल के लिए भी बेजोड़ विवाह किये जाते हैं, अर्थात् हमारी लड़की

या हमारे लड़के की ससुराल इस प्रकार की घरानेदार या कुलवान होगी, इसलिए भी बेजोड़ विवाह किये जाते हैं।

कई माता पिता, लोभ के वश होकर, अपनी सन्तान का हिताहित नहीं देखते और उसका विवाह, ऐसे वर या ऐसी कन्या के साथ कर देते हैं, जो बेजोड़ और एक दूसरे की अभिरुचि के प्रतिकूल होते हैं। कई माता पिता, अपनी अबोध कन्या को, वृद्ध के गले मढ़ देते हैं। विशेषतः वे धन के लिए ही ऐसा करते हैं, यानी कन्या के बदले में द्रव्य लेने के लिए। द्रव्य-लालसा के ... वे इस बात को विचारने की भी आवश्यकता नहीं समझते, कि इन दोनों में परस्पर मेल रहेगा या नहीं तथा हमारी कन्या, चिर दिन सुहागिन रह सकेगी! उन्हें तो केवल द्रव्य से काम रहता है, उनकी तरफ से कन्या की चाहे जैसी ही दुर्दशा क्यों न हो!

विवाह और पत्नी के इच्छुक वृद्ध भी यह नहीं देखते, कि मैं इस तरुणी के योग्य हूं या नहीं और यह तरुणी, मुझे पसन्द करेगी या नहीं! विद्वानों का कथन है—

वृद्धस्य तरुणी विषम्।

—सूक्ति।

वृद्ध को, तरुणी विष के समान बुरी लगती है।'

इसका उल्टा यह होगा, कि तरुणी को वृद्ध, विष के समान बुरा लगता है। जब पति-पत्नी एक दूसरे को विष के समान लगते हों, तब उनका जीवन सुखमय कैसे बीत सकता है?

[इ]स बात पर, न तो धन-लोभी माता पिता ही विचार करते हैं, न [व]ह कामी वृद्ध और न भोजन लोभी बराती या पञ्च। केवल धन के [बल] से, एक वृद्ध उस तरुणी पर अधिकार कर लेता है, जिसका [अधि]कारी एक युवक हो सकता था और इसी प्रकार माता पिता [की] धन-लोलुपता से, एक तरुणी को अपना वह जीवन वृद्ध के [अर्प]ण कर देना पड़ता है, जिस जीवन को वह किसी युवक के साथ [व्य]तीत करने की अभिलाषा रखती थी। वृद्ध विवाह के विषय में [प्रसं]गता में आई हुई एक कहानी इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से [दी जा]ती है।

एक वृद्ध अमीर की स्त्री का देहान्त हो गया। अमीर के [दोस्तों] ने अमीर से दूसरा विवाह करने के लिए कहा। अमीर ने उत्तर दिया, कि मैं किसी बुड्ढी स्त्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, मुझे बुड्ढा स्त्री पसन्द नहीं। दोस्तों ने उत्तर दिया, कि आपको बुड्ढी [स्त्री] के साथ विवाह करने के लिए कौन कहता है! आप तरुणी के [साथ] विवाह कीजिये। हम, आपके लिए तरुणी की तलाश कर [देंगे।] दोस्तों की बात सुनकर, वृद्ध अमीर ने कहा कि—यह आप [लोगों] की मेहरबानी है, लेकिन मैं पूछता हूँ, कि जब मुझ बुड्ढे को [बुड्ढी स्त्री] पसन्द नहीं है, तो क्या वह तरुण स्त्री, मुझ बुड्ढे को [पसन्]द करेगी? यदि नहीं, तो फिर जबरदस्ती से क्या लाभ! अमीर [की ब]ात सुन कर, दोस्तों को शर्मिन्दा होना पड़ा और उन्होंने, अमीर [के वि]वाह की बात छोड़ दी।

[वृद्ध] विवाह पर [एक वृ]द्ध कहानी।

वृद्ध पुरुष के साथ तरुण स्त्री के विवाह के समान ही, १
या धन के लोभ से बालक पुरुष के साथ तरुणी, या तरुण पुरुष
साथ बालिका भी विवाह दी जाती हैं।

बालिका युवक और बालक युवती विवाह।

समस्त विवाह बेजोड़ हैं। ऐसे वि
समाज में भयङ्कर हानि फैलाने वाले, भ
सन्तति का जीवन दुःखमय बनाने वाले और पारलौकिक जीवन
पतनशील करने वाले हैं।

बेजोड़ विवाह से होने वाली समस्त हानियों का व
करना शक्ति से परे की बात है, फिर भी संक्षेप में कुछ हानि
बताई जाती हैं। बेजोड़ विवाह से कुल की हानि होती है। विधवा
की संख्या बढ़ती है, जिससे व्यभिचार-वृद्धि के साथ ही, आत्म ह
भ्रूण हत्या आदि होती रहती हैं और अन्त में अनेक विध
वेश्या बन कर अपना जीवन घृणित रीति से बिताने लगती
समाज में स्त्रियों की कमी होने से, कई युवक अविवाहित रह
हैं और दुराचारी बन जाते हैं। बेजोड़ पति पत्नी से उत्पन्न सन्त
भी अशक्त, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है।

जैन शास्त्रों में, ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता,
बेजोड़ विवाह का पोषक हो। अन्य ग्रन्थों में भी, बेजोड़ विवाह
निषेध ही किया गया है। जैसे —

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धन लिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेता जायते नरः॥

स्कन्दपुराण

'जो पिता अपनी कन्या—वृद्ध, नीच, धन के लोभी, कुरूप और
गुण पुरुष को देता है वह प्रेत-योनि में जन्म लेता है।'

इसी प्रकार कन्या विक्रय के विषय में कहा है —

कन्येनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ।
रौरवे बहु वर्षाणि पुरीषं मूत्रं मश्नुते ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति।

'कन्या देकर बदले में, थोड़ा भी धन लेने वाला पिता बहुत
वर्ष रौरव नरक में निवास करके विष्ठा मूत्र खाता रहता है।'

आधुनिक धनमय विवाह प्रथा की, और भी बहुत समालोचना की जा सकती है। लेकिन विस्तार भय से ऐसा नहीं किया गया। यहाँ तो संक्षेप में केवल यह बताया गया है कि आजकल की विवाह प्रथा, पहले की विवाह प्रथा से बिल्कुल भिन्न है और इस भिन्नता से अनेक हानियाँ हैं।

अधिकांश आधुनिक विवाहों में, अपव्यय भी सीमातीत होता है। आतिशबाजी, रण्डी, बाजे बारात और ज्ञाति भोजनादि में इतना अधिक द्रव्य लुटाया जाता है कि

घर म अपव्यय।

जितने द्रव्य से, सैकड़ों-हजारों लोग, वर्षों पेट भर सकते हैं। धनिक लोग विवाह के अपव्यय द्वारा, गरीबों के जनभाग में काँटे बिछाते हैं। धनिकों के आडम्बर-पूर्ण विवाह का आदर्श मान कर, अनेक गरीब भी कर्ज लेकर विवाह में आडम्बर करते हैं और धनिकों द्वारा स्थापित इस आदर्श का अनुसरण करके अपने को, चिरकाल के लिए दुःखी बना लेते हैं।

विवाह के अपव्यय में धन की ही हानि नहीं होती, किन्तु कभी २ जन की भी हानि हो जाती है। बहुत से लोग, खाने पीने की अनियमितता से बीमार होकर मर जाते हैं और बहुत से आतिश बाजी की अग्नि में झुलस कर, विवाह की भेंट हो जाते हैं। कई युवक विवाह में आई हुई वेश्याओं के ही शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार आजकल की विवाह-पद्धति द्वारा अपना ही सर्वनाश नहीं किया जाता, किन्तु दूसरों के सर्वनाश का भी कारण उपस्थित कर दिया जाता है।

आजकल समाज के सन्मुख विधवा विवाह का जो प्रश्न उपस्थित है, उसके मूल कारण बाल विवाह, बेजोड़ विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति ही है। बाल विवाह और बेजोड़ विवाह के कारण एक ओर तो विधवाओं की संख्या बढ़ जाती है और दूसरी ओर बहुत से पुरुष अविवाहित ही रह जाते हैं। इसी प्रकार विवाह की खर्चीली पद्धति के कारण भी अनेक गरीब परन्तु योग्य युवक अविवाहित रह जाते हैं। क्योंकि उनके पास वैवाहिक आडम्बर करने को द्रव्य नहीं होता। यदि बाल विवाह और बेजोड़ विवाह बन्द हो जावें, विवाहों में अधिक खर्च न हुआ करे, तो विधवाओं और अविवाहित पुरुषों की बढ़ी हुई संख्या न रहने पर सम्भवतः विधवा विवाह का प्रश्न आप ही हल हो जावे।

आजकल की विवाह प्रथा का सिर्फ एक प्रश्न।

सारांश यह कि पूर्व समय में, विवाह तब किया जाता था, जब पति पत्नी, सर्वविरति ब्रह्मचर्य पालने में अपने को असमर्थ

प्राचीन और आधुनिक विवाहों में प्रधान अन्तर।

मानते थे। अर्थात् विवाह कोई आवश्यक कार्य नहीं माना जाता था, लेकिन आजकल विवाह एक आवश्यक-कार्य माना जाता है। जीवन की सफलता विवाह में ही समझी जाती है। जब तक लड़के-लड़की का विवाह न हो जावे, तब तक वे दुर्भागी समझे जाते हैं। इसी कारण आवश्यकता और अनुभव के बिना ही विवाह कर दिया जाता है और वह भी बेजोड़ तथा हजारों लाखों रुपये व्यय करके धूमधाम के साथ। पूर्व समय की विवाह प्रथा समाज में शान्ति रखती थी, समाज को दुराचार से बचाती थी और अच्छी सन्तान उत्पन्न करके, समाज का हित साधन करती थी। आजकल की विवाह प्रथा इसके विपरीत कार्य करती है। बाल विवाह, बेजोड़ विवाह और विवाह की खर्चीली पद्धति, समाज में अशान्ति उत्पन्न करती है, लोगों को दुराचार में प्रवृत्त करती है और रुग्ण एवं अल्पायुषी सन्तान द्वारा समाज का अहित करती है।

शङ्का समाधान।

वैवाहिक विषय के वर्णन पर से कोई यह कह सकता है, कि साधुओं को इन सांसारिक बातों से क्या मतलब और वे ऐसी बातों के विषय में उपदेश क्यों दें? इसका उत्तर यह है, कि यद्यपि इन सांसारिक बातों से साधु लोग परे हैं लेकिन साधुओं का धार्मिक जीवन नीति-पूर्ण संसार पर ही अवलम्बित है। यदि संसार में सर्वत्र अनीति छा

जाय, तो धार्मिक जीवन के लिए स्थान भी नहीं रह सकता। इसी दृष्टिकोण से—विवाह की विधि बताने के लिए ही शास्त्रों की कथा में, विवाह बन्धन में जुड़ने वाले स्त्री पुरुष की समानता आदि का वर्णन किया है। यह बात दूसरी है, कि उनमें बाल विवाह, असमय के सहवास आदि का निषेध नहीं है। लेकिन उस समय इस प्रकार की कुप्रथाएँ थीं ही नहीं, इसलिये इस प्रकार के उपदेश की भी आवश्यकता न थी। अन्यथा, पूर्ण ब्रह्मचर्य का ही विधान करने वाले होने पर भी, जैन शास्त्र ऐसे अपूर्ण नहीं हैं कि उनमें साँसारिक-जीवन की विधि पर कथाओं द्वारा प्रकाश न डाला गया हो। सरीसया यया, सरीसया तया' आदि पाठ इसी बात के द्योतक हैं, कि विवाह समान युवावस्था में ही होता था।

---

(९)

देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत।

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि य पश्यति स पश्यति॥

जो मनुष्य पराई स्त्री को माता के समान जानता है, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान मानता है और सब प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही यथार्थ देखने वाला है।'

ऊपर यह तो कहा जा चुका है, कि जो पुरुष या स्त्री पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने में समर्थ हैं उन्हें विवाह न करना चाहिए और जो ऐसा करने में असमर्थ हैं, उनके लिए विवाह करना, अनुचित भी नहीं माना जाता। अब देखना यह है कि विवाह करके भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है या नहीं और किया जा सकता है तो किस रूप में?

विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य।

प्रत्येक बात का, ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा आदर्श रहता ही है। मनुष्य मात्र से एक ही आदर्श की ओर चलने की आशा करना उचित नहीं है, क्योंकि सब लोगों में, समान बुद्धि, शक्ति, साहस, धैर्य आदि नहीं होते। इस बात को दृष्टि में रखकर ही जैन शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य का भी ऊँचे से ऊँचा और नीचे से नीचा ऐसे दोनों ही प्रकार के आदर्श बताये हैं। ब्रह्मचर्य के सबसे ऊँचे आदर्श का नाम, सर्वविरति पूर्ण ब्रह्मचर्य है और उससे नीचे आदर्श का नाम देशविरति ब्रह्मचर्य है। देशविरति ब्रह्मचर्य, अर्थात् आंशिक ब्रह्मचर्य।

विवाहित पुरुष-स्त्री भी देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन भली प्रकार कर सकते हैं। बल्कि, देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करना, धार्मिक एवं नैतिक-दृष्टि से प्रत्येक पुरुष स्त्री का कर्तव्य है। देशविरति ब्रह्मचर्य को स्वीकार करने से, विवाहित स्त्री पुरुष के सांसारिक कार्यों में, किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। क्योंकि

सर्वविरति ब्रह्मचर्य में मैथुनाद्वा महित सब प्रकार के मैथुन का मन, वचन और काय से करने, कराने और अनुमोदन करने का त्याग लिया जाता है। लेकिन देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का आदर्श, इससे बहुत नीचा है। देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाला जो प्रतिज्ञा करता है, वह इस प्रकार होती है —

सदार सतोसिए अवसेस मेहुण पचक्खामि जाव जीवाए (देवदेवीसम्बन्धी) दुविहं तिविहेण न करमि न कारवमि मणसा वयसा कायसा मनुष्यमनुष्यणी एव तिर्यंचतिर्यंचणी सम्बन्धी एकविहं एगविहेण नकरमि कायसा—

इस प्रतिज्ञा के अनुसार, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाले पुरुष या स्त्री के लिए, सांसारिक काम न रुकने योग्य बहुत गुंजायश रह जाती है। इसलिए विवाहित पुरुष स्त्री को, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करना एवं पालन करना चाहिए।

पुरुष और स्त्री के भेद से, देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत का नाम स्वदार सन्तोष व्रत और स्वपति सन्तोष व्रत है। इन दोनों व्रत की अलग अलग व्याख्या की जाती है।

स्वदार सन्तोष-व्रत।



जिस ब्रह्मचर्य-व्रत में, स्वदार का आगार रक्खा जाता है, उसे स्वदार-सन्तोष-व्रत कहते हैं। इस व्रत को स्वीकार करने में

स्वदारा। उन सभी स्त्रियों से मैथुन करने का त्याग करना पड़ता है जो स्व की नहीं हैं। जो स्त्री स्व (स्त्री) कहलाती है उसके सिवा अन्य सभी स्त्रियाँ परदार हैं। और यह व्रत स्वीकार करने में ऐसी सभी स्त्रियों से मैथुन-सेवन का त्याग किया जाता है। इस प्रकार, गृहस्थ पुरुष जिस देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करते हैं, उसका नाम स्वदार सन्तोष व्रत है और इस व्रत को स्वीकार करने से, परदार का विरमण (त्याग) किया जाता है।

स्वदार सन्तोष व्रत का बहुत माहात्म्य है। शास्त्रकारों का कथन है, कि इस व्रत को स्वीकार करने वाले पुरुष की कामेच्छा सीमित हो जाती है जिससे वह असीम काम। कामेच्छा के पाप से बच जाता है। परस्त्री गमन का त्याग करने वाले पुरुष का चित्त, परस्त्री की ओर जाता नहीं, जिससे उसके द्वारा परस्त्री सेवन का पाप नहीं होता। व्यभिचारी की अपेक्षा उसका शरीर बलवान, मेधावी और दीर्घायुषी होता है और उसकी सन्तान भी ऐसी ही होती है। अन्य ग्रन्थकारों ने भी, इस व्रत का बहुत माहात्म्य बताया है। पुराणों के रचयिता व्यासजी कहते हैं—

स्वदार यस्य सन्तोष परदार निवर्तनम्।
अपवादोऽपितो यस्य तस्य तीर्थं फलं गृहे॥

। व्यास स्मृति।

'स्वदार में सन्तोष करने और पराई स्त्री से निवर्तनेवाला पुरुष निन्दा से बच जाता है उसका किसी प्रकार अपवाद नहीं होता तथा पर में ही उसे तीर्थ का फल मिल जाता है '

स्वदार-सन्तोष व्रत स्वीकार करने से, दाम्पत्य प्रेम में भी वृद्धि होती है। पति पत्नी में कलह नहीं होता। लोक में निन्दा नहीं होती, किन्तु विश्वासपात्र माना जाता है। धन, वैभव, बल, बुद्धि, यश, कीर्ति, निर्भयता और सद्गुण सुरक्षित रहते हैं। परलोक में भी वह उन दुःखों से बचा रहता है, जो परदार गामी को प्राप्त होते हैं। जैन सिद्धान्त कहते हैं, ऐसा पुरुष-राज्य भण्डार में राज्य अन्ते उर में साहूकार के भण्डार में और अन्तेउर में जावे तो भी उसकी अप्रतीति नहीं होती।

परदार गमन निन्दा।

स्वदार सन्तोष व्रत रहित यानी परदार-गामी पुरुष, दुराचारी कहाता है और वह, अपनी स्त्री को भी सन्तुष्ट रखने में असमर्थ रहता है। ऐसे पुरुष का विश्वास, न स्व स्त्री ही करती है, न पर-स्त्री ही। स्व-पत्नी से सदा कलह बना रहता है। घर, दुःखमय हो जाता है। सन्तान, या तो होती ही नहीं और होती भी है, तो रुग्ण, अल्पायुषी और दुराचारिणी। क्योंकि, माता पिता के सद्गुण दुर्गुण का प्रभाव, सन्तान पर पड़ता ही है।

परदार-गामी पुरुष की, लोक में अत्यन्त निन्दा होती है कोई उसका विश्वास नहीं करता। सब लोग, यहाँ तक कि अपने

स्त्री भी, घृणा की दृष्टि से देखती है। उसका जीवन, कलंकित, दूषित एवं पापपूर्ण रहता है। पर स्त्री की इच्छा रखनेवाले पुरुष की, संचित कीर्ति भी नष्ट हो जाती है। यश उसके पास भी नहीं फटकता। धन वैभव, उसे त्याग देते हैं। बल, सौन्दर्य, साहस और धैर्य का उसमें अभाव सा हो जाता है। वह, दुर्गुणों और पातकों का घर बन जाता है। उसमें से, सद्गुण निकल जाते हैं। भय, क्रोध, रोग, शोक, अपमान, दीनता आदि समस्त दु:ख उसे घेर लेते हैं। कभी कभी तो मृत्यु का भी आलिंगन करना पड़ता है। परदार गामी का मन, सदैव कलुषित बना रहता है, जिससे नीति और धर्म से निषिद्ध कार्य भी सदा करता ही रहता है। इस प्रकार, उसका इहलौकिक जीवन भी दु:खमय बन जाता है और परलोक में भी उसे नरक की घोर से घोर वेदना सहनी पड़ती है।

पर स्त्री-सेवन की बुराइयाँ बताते हुए, गांधीजी लिखते हैं कि 'जहाँ पर स्त्री गमन न हो, वहाँ पर प्रतिशत पचास डाक्टर बेकार हो जायेंगे। पर-स्त्री-गमन से होने वाले रोगों की दवाइयाँ भी ऐसी जहरीली होती हैं, कि यदि उन दवाइयों से एक रोग का नाश मालूम होने लगता है, तो दूसरे रोग घर कर लेते हैं और पीढ़ी दरपीढ़ी चल निकलते हैं।'

गांधीजी के कथन का अभिप्राय यह है, कि पर-स्त्री-सेवन से रोग और अशक्तता का ऐसा आधिक्य हो जाता है, कि जिसका फल भावी सन्तति को भी भोगना पड़ता है। वे आगे कहते हैं कि

'मनुष्य के सामाजिक जीवन का केन्द्र, एक-पत्नीव्रत ही है।' इसलिए, स्वदार सन्तोष व्रत स्वीकार करके, पर स्त्री का त्याग करना ही लाभप्रद है। अन्य ग्रन्थकार भी कहते हैं—

> दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
> दुःख भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
> नहीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन दृश्यते।
> यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥
>
> मनुस्मृति।

'दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित होता है, सदा दुःखी, रोग ग्रस्त और अल्पायुषी होता है। इस संसार में पुरुष का आयुष्य क्षी करने वाला ऐसा कोई भी काम नहीं है, जैसा कि पराई स्त्री के सा रमण करना है।'

परदार-गमन से, केवल आयुर्बल ही क्षीण नहीं होत किन्तु बल, साहस, धन वैभव आदि भी नष्ट हो जाते हैं। कैसा भ बलवान हो, कैसा भी वैभवशाली हो और कैसा भी साहसी हँ लेकिन यदि उसमें पर-स्त्री चाहने का रोग है, तो उसका समस्त बल वैभव और साहस, गर्म तवे पर गिरी हुई जल की बूंद के समा नष्ट हो जाता है। पराई स्त्री की इच्छा करने वाला, अपनी ही हानि नहीं करता, किन्तु अपने कुल, परिवार और मित्रों की भी हानि करता है। राजा रावण में, बल की कमी नहीं थी, वैभव भी ख़ू था और साहस भी पर्याप्त था, लेकिन वह सदाचारी स्वदार-सन्तो

न था, इसलिए सका बल, वैभव तथा साहस किसी काम न आया और परिवार सहित नष्ट हो गया। यही बात मणिरथ पद्मोत्तर आदि के लिए भी है। इनमें भी यदि सदाचार का अभाव न होता, तो इनके नष्ट होने का भी कोई ऐसा निन्द्य कारण न था। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद में लिखा है, कि जो अविचारी, पर स्त्री की अभिलाषा करता है, उसे चार फल मिलते हैं—(१) अपयश (२) निद्रानाशक चिन्ता, (३) दण्ड और (४) नरक।' इस प्रकार अन्य ग्रन्थों ने भी, परदार गमन की निन्दा ही की है।

पराई स्त्री के साथ रमण करने वाला पुरुष, कभी कभी कैसे घोर पाप में प्रवृत्त हो जाता है और पराई स्त्री के त्याग वाला पुरुष, ऐसे पाप से किस प्रकार बच जाता है, इसके लिए एक दृष्टान्त दिया जाता है।

परदार-गमन की हानि पर एक उदाहरण।

एक बार, तीन आदमी विदेश गये। इन तीनों में से एक तो व्रतधारी श्रावक था—उसने स्वदार सन्तोष व्रत स्वीकार करके पर-स्त्री का त्याग कर दिया था—और शेष दो आदमी, व्रत रहित एवं परदार गामी थे। इन तीनों की माताएँ, बहुत पहले से ही घर से निकल गई थीं, जो उसी स्थान पर वेश्यावृत्ति करती थीं, जहाँ ये तीनों आदमी गये थे। उन त्यागव्रत रहित दोनों आदमियों ने, एक रात में, वेश्यागमन का विचार किया। इस विचार को, उन्होंने अपने श्रावक मित्र से भी प्रकट किया। श्रावक ने, अपने साथियों

के विचार का विरोध किया तथा वेश्यागमन से इनकार कर दिया। उन दोनों ने, श्रावक से बहुत आग्रह किया और कहा, कि तुम्हें वेश्या के यहाँ जाने को पैसे हम देंगे, तुम आओ! यहाँ तक कि दोनों साथियों ने, श्रावक को वेश्या के यहाँ जाने के लिये विवश कर दिया।

तीनों मित्र, उक्त तीन वेश्याओं के यहाँ गये, जो इनकी माताएं थीं। योगा योग से तीनों आदमी अपनी २ माँ के ही यहाँ गये। श्रावक को तो परस्त्री-समीप का त्याग था, इसलिए वह वेश्यारूपिणी अपनी माता के पास बैठ गया और उससे बातें करने लगा। बातों ही बातों में इन दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। श्रावक ने अपनी माता से पूछा कि—तू यहाँ कैसे आगई? उसने उत्तर दिया कि मैं और मेरी पड़ोस की दो साथिनी जो अमुक-अमुक की माँ हैं—हम तीनों यहाँ बहुत दिनों से वेश्यावृत्ति करती हैं। श्रावक ने कहा—अनर्थ हुआ! वे दोनों भी यहाँ आये हैं और अपनी ही माताओं के यहाँ गये हैं! जल्दी दौड़ कर उन्हें बचाओ!

माता और पुत्र, उन दोनों के यहाँ दौड़ कर गये, परन्तु इनके जाने से पूर्व ही वे दोनों अपनी अपनी माँ से भ्रष्ट हो चुके थे।

श्रावक की प्रेरणा से ये तीनों स्त्रियाँ भी वेश्या वृत्ति छोड़ कर अपने २ घर चलीं। श्रावक के दोनों मित्र भी साथ ही थे लेकिन उन दोनों मित्रों को अपने कृत्य पर इतनी लज्जा हुई कि वे दोनों ही जहाज से कूद कर डूब मरे।

यदि उस एक श्रावक की ही तरह ये दोनों मित्र भी परदार गामी होते, तो इस प्रकार माँ के साथ भ्रष्ट होने पर लज्जित होकर रने का मौका ही क्यों आता ? आजकल भी इस प्रकार की कई नाएँ सुनने में आती हैं, जिनमें परदार-गामी पुरुष ने अपनी पुत्री ादि के साथ भी दुराचार किया। जम्बू चरित्र में भी ऐसी कई थायें आती हैं। ऐसे घोर पापों से बचने के लिए भी, स्वदार न्तोष व्रत स्वीकार करना और परस्त्री का त्याग करना उचित है।

आजकल के पुरुषों में, शायद ऐसे पुरुष तो अधिक निक ो जो मांस-मदिरा के त्यागी हों, लेकिन परदार-त्यागी पुरुष सम्भवतः बहुत कम निकलेंगे। मांस मदिरा के त्यागी और परदार भोगी पुरुष, संभवतः परदार को मांस-मदिरा की अपेक्षा माह्य समझते हैं, लेकिन वास्तव में मांस-मदिरा अपेक्षा परदार माह्य नहीं है, किन्तु मांस मदिरा के समान ही ाज्य है। मांस मदिरा की ही तरह परदार-सेवन भी बुद्धि, धन, न्दर्य, दया, सहानुभूति और धर्म का नाशक एवं हिंसादि पापों प्रवृत्त करने वाला है। ऐसा होते हुए भी, बहुत से लोग इस पाप मांस-मदिरा के पाप की तरह नहीं बचते।

दार-गमन, मांस और दिरा के समान ही त्याज्य है।

उपासक दशाङ्ग सूत्र के ८ वें अध्ययन में, महाशतक ावक का वर्णन आया है। महाशतक की स्त्री रेवती मांस भक्षिणी ी, किन्तु महाशतक पर ही अनुरक्त थी। इस कारण शायद महा

शासक ने यह विचारा होगा कि यदि मैं इस त्याग दूंगा, तो सम्भव है कि यह व्यभिचार का भयंकर पाप करने लगे। जान पड़ता है, कि इसी विचार से महाशासक आचार्य ने, मांस भक्षिणी वेश्या का त्याग नहीं किया हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि महाशासक की दृष्टि में व्यभिचार यदि मांस भक्षण से अधिक नहीं, तो उसके समान ही पाप था।

पत्नी को सदाचारिणी रखने के लिये स्वयं सदाचारी बनो।

बहुत से पुरुष, अपनी स्त्री से तो पतिव्रत पालन कराना चाहते हैं, उसे पर पुरुष गामिनी नहीं बनाना चाहते, लेकिन अपने आपको, परदार-गमन के लिए स्वतन्त्र समझते हैं। ऐसे लोग जान बूझ कर बबूल बोते हैं और आम खाने की इच्छा रखते हैं। किसी नियम का पालन दूसरे से तभी कराया जा सकता है, जब स्वयं भी उसका पालन करे। जब तक स्वयं द्वारा किसी नियम का पालन न किया जावे, तब तक दूसरे से उस नियम का पालन कराने में सफलता नहीं मिल सकती। यह बात दूसरी है कि परदारगामी पुरुष की स्त्री, अपना धर्म विचार कर स्वयं ही सदाचारिणी रहे, लेकिन परदारगामी पुरुष को सैद्धान्तिक रूप से यह अधिकार नहीं रहता कि वह अपनी स्त्री को सदाचारिणी रहने के लिए बाध्य कर सके। यह अधिकार उसे तभी हो सकता है, जब वह भी सदाचार का पालन करता हो। बल्कि स्त्रियों को पर पुरुष-गामिनी बनाने वाले, परदार-गामी पुरुष ही हैं। ज्यादातर

का स्वय ही पर पुरुष गामिनी नहीं होती, किन्तु परदार गामी पुरुष ही अपने लिए किसी स्त्री को पर पुरुष गामिनी बनाता है। अत अपनी स्त्री को पतिव्रता, सदाचारिणी और पतिपरायणा रखने के लिए भी, स्वदार सन्तोष-व्रत स्वीकार करके पालन करना चाहिये।

यद्यपि इस व्रत में, स्व-स्त्री का आगार रहता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि स्व स्त्री से भी मैथुन करने में स्वच्छन्दता से काम लिया जावे। क्योंकि इस व्रत का नाम स्वदार सन्तोष है। स्वदार रमण नाम नहीं है। यदि स्वदार-रमण नाम होता, तब तो स्व स्त्री के सेवन में स्वच्छन्दता को स्थान हो सकता था, लेकिन स्वदार सन्तोष नाम में, स्वच्छन्दता को स्थान ही नहीं रहता। इसलिए आगार होने पर भी, स्वदार-सेवन में नीतिकारों का बनाई हुई मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। नीतिकार का कथन है —

स्व-स्त्री सेवन में नियमितता।

सन्तानार्थञ्च मैथुनम्।

'मैथुन का विधान सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही है।'

वैद्यक मतानुसार, रजोदर्शन से पूर्व स्त्री-पुरुष का संसर्ग सन्तानोत्पत्ति के लिए निरर्थक है और ऋतु स्नान के सिवा अन्य समय में किये गये मैथुन से, वीर्य वृथा जाता है। इसलिये ग्रन्थकारों ने कहा है —

शतक ने यह विचारा होगा कि यदि मैं इसे त्याग दूंगा, तो सम्भव है कि यह व्यभिचार का भयङ्कर पाप करने लगे। जान पड़ता है, कि इसी विचार से महाशतक श्रावक ने, मांस भक्षिणी रेवती का त्याग नहीं किया हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि महाशतक की दृष्टि में व्यभिचार यदि मांस भक्षण से अधिक नहीं, तो उसके समान ही पाप था।

पत्नी को सदाचारिणी रखने के लिये स्वयं सदाचारी बनो।

बहुत से पुरुष, अपनी स्त्री से तो पतिव्रत पालन कराना चाहते हैं, उसे पर पुरुष गामिनी नहीं बनाना चाहते, लेकिन अपने आपको, परदार-गमन के लिए स्वतन्त्र समझते हैं। ऐसे लोग जान-बूझ कर धोखा खाते हैं और आम खाने की इच्छा रखते हैं। किसी नियम का पालन दूसरे से तभी कराया जा सकता है, जब स्वयं भी उसका पालन करे। जब तक स्वयं द्वारा किसी नियम का पालन न किया जावे, तब तक दूसरे से उस नियम का पालन कराने में सफलता नहीं मिल सकती। यह बात दूसरी है कि परदारगामी पुरुष की स्त्री, अपना धर्म विचार कर स्वयं ही सदाचारिणी रहे, लेकिन परदारगामी पुरुष को सैद्धान्तिक रूप से यह अधिकार नहीं रहता कि वह अपनी स्त्री को सदाचारिणी रहने के लिए बाध्य कर सके। यह अधिकार उसे तभी हो सकता है, जब वह भी सदाचार का पालन करता हो। बल्कि स्त्रियों को पर पुरुष-गामिनी बनाने वाले, परदार-गामी पुरुष ही हैं। ज्यादातर

स्री स्वय ही पर पुरुष गामिनी नहीं होता, किन्तु परदार गामी पुरुष ही अपने लिए किसी स्त्री को पर पुरुष गामिनी बनाता है। अत अपनी स्त्री को पतिव्रता, सदाचारिणी और पतिपरायणा रखने के लिए भी, स्वदार सन्तोष व्रत स्वीकार करके पालन करना चाहिये।

यद्यपि इस व्रत मे, स्व स्त्री का आगार रहता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि स्व स्त्री मे भी मैथुन करने में स्वच्छन्दता से काम लिया जाये। क्योंकि इस व्रत का नाम, स्वदार सन्तोष है। स्वदार रमण नाम नहीं है। यदि स्वदार-रमण नाम होता, तब तो स्व स्त्री के सेवन में स्वच्छन्दता को स्थान हो सकता था, लेकिन स्वदार सन्तोष नाम में, स्वच्छन्दता को स्थान ही नहीं रहता। इसलिए आगार होने पर भी, स्वदार-सेवन मे नीतिकारों की बताई हुई मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। नीतिकार का कथन है —

स्व-स्त्री सेवन में नियमितता।

सन्तानार्थञ्च मैथुनम्।

'मैथुन का विधान, सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही है।'

वैद्यक मतानुसार, रजोदर्शन से पूर्व स्त्री पुरुष का संसर्ग सन्तानोत्पत्ति के लिए निरर्थक है और ऋतु स्नान के सिवा अन्य समय मे किये गये मैथुन से, वीर्य वृथा जाता है। इसलिये ग्रन्थकारों ने कहा है —

रजो दर्शनत पूर्वं स्त्री प्रसङ्गं मा चरेत ।

भविष्य पुराण ।

'रजोदर्शन से पहले, स्त्री संसर्ग न करे।'

इस प्रकार, ऋतु स्नान से पूर्व, स्त्री सेवन का भी निषेध किया गया है। ऋतु स्नान से पूर्व, स्त्री-सेवन द्वारा वीर्य को वृथा नाश करने वाले के लिए ग्रन्थकार कहते हैं —

व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्या मवाप्नुयात् ।

निर्णय सिन्धु ।

'वीर्य को वृथा खोने से, ब्रह्महत्या का पाप होता है।'

इस प्रकार स्वच्छन्दता से, अपनी स्त्री का सेवन करने का भी निषेध किया गया है। वैद्यक मतानुसार, स्वस्त्री के साथ भी अति मैथुन करने से, शारीरिक शक्ति क्षय होती है, वीर्य पतला पड़ता है, सन्तान दुर्बल, अल्पायुषी और दुर्गुणी होती है। अति मैथुन करने वाला अच्छे कार्य नहीं कर सकता। ऐसा पुरुष यदि कभी अपनी स्त्री से अलग रहे, तो उसमें व्यभिचार-दोष का आ जाना बहुत सम्भव है। क्योंकि, वह अपनी मैथुनेच्छा को रोकने में असमर्थ हो जाता है, इसलिए दुराचार में पड़ना आश्चर्य की बात नहीं। अति मैथुन से आँखों की ज्योति क्षीण हो जाती है, दाँत गिर जाते हैं और शरीर से दुर्गन्ध आने लगती है। अति मैथुन के कारण क्षय, प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुंसकता आदि रोग उत्पन्न होते हैं और आयुर्बल कम होता है। वैद्यकग्रन्थों में कहा है —

अति स्त्री सम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान् ।
क्रीडायामपि मेधावी हितार्थी परिवर्जयेत् ॥१॥
शूल कास ज्वर श्वास कार्श्य पाण्ड्वामयक्षयाः ।
अति व्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ॥२॥

'अति स्त्री प्रसङ्ग से अपने को बचाये रहना, सावधान रहना मनुष्य को उचित है। अपना भला चाहने वाले बुद्धिमान पुरुषों के लिए क्रीड़ा में भी अति प्रसङ्ग वर्ज्य है। अति मैथुन से शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, दुबलता, पीलिया, क्षय आदि वात व्याधि उत्पन्न होती हैं।'

तात्पर्य यह है कि अपनी स्त्री से भी अति मैथुन वर्ज्य है। अति मैथुन के साथ ही, नीतिज्ञों ने, असमय के मैथुन का भी निषेध किया है। दिन का समय, रात का पहला और अन्तिम पहर, था स्त्री गर्भवती हो वह समय मैथुन के लिए निषिद्ध है। दिन में या रात के पहले और अन्तिम पहर में, स्वस्त्री से किया गया थुन भी शरीर सम्बन्धी वे ही हानियाँ करने वाला होता है, जो ानियाँ परस्त्री गमन से होती हैं। इसी प्रकार गर्भवती स्त्री से थुन करने से, गर्भ के बालक पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। भी-कभी तो माता पिता की इस कुचेष्टा से, गर्भ में ही बालक की त्यु हो जाती है। यदि बालक जन्मा भी, तो वह बचपन से ही ब्रह्मचर्य की कुचेष्टायें करने लगता है और अन्त में, महाभयङ्क रिणाम को प्राप्त होता है। गर्भवती स्त्री से मैथुन करने पर, त्री भी रोग ग्रस्त हो जाती है, तथा प्रसूति रोगादि से मर भी जात

है। गर्भवती से मैथुन करने के कार्य को, यदि मनुष्य हत्या के समान पाप कहा जावे, तब भी कोई अत्युक्ति न होगी।

गर्भवती स्व-स्त्री के समान, उस स्वस्त्री से भी मैथुन करना त्याज्य है, जिसका बालक छोटा हो। छोटे बालक की माँ के साथ, ऋतुस्नान से मैथुन करना भी, वैद्यक और नीति के अनुसार हानिप्रद है। ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करने से और उस स्त्री के गर्भवती हो जाने से, उस छोटे बालक का विकास रुक जाता है और गर्भ का बालक भी कमजोर, रुग्ण एवं अल्पायुषी होता है। इसलिए छोटे बच्चे वाली स्व स्त्री से भी ऐसा मैथुन करना त्याज्य है।

इस समय के स्वदार-सन्तोषी।

वर्तमान समय के परदार-त्यागी और स्वदार-सन्तोषी पुरुषों में संभवतः ऐसे पुरुष तो गिन्ती के ही निकलेंगे, जो स्व-स्त्री-सेवन में नीतिकारों की बताई हुई मर्यादाओं का पालन करते हों। लोगों के मुँह से, एक-दो या चार छः दिनों के लिए मैथुन का त्याग कराने की बात सुन कर, समाज की पतनावस्था पर दया आती है। उनके इस त्याग लेने की बात से यह स्पष्ट है, कि ऐसा कोई ही दिन जाता होगा, जिस दिन वे मैथुन से बचे रहते हों। यद्यपि नीतिकारों ने ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में स्त्री गमन का निषेध किया है और इस बात का समर्थन वैद्यक ग्रन्थ भी करते हैं, तथा प्राकृतिक रचना पर दृष्टिपात करने से भी यही प्रकट है, फिर भी लोग इस मर्यादा की अवहेलना करते हैं। ऐसे लोगों को मनुष्य कहने का

कारण केवल उनकी शारीरिक रचना के सिवा और कुछ नहीं रहता। क्योंकि जिन नियमों का पालन बुद्धिहीन पशु भी करते हैं, उन नियमों का पालन, यदि बुद्धि-सम्पन्न मनुष्य न करे, तो फिर उसमें पशुओं की अपेक्षा शारीरिक रचना के सिवा कौनसी विशेषता रही? पशु भी प्रायः ऋतुकाल के सिवा अन्य समय में मैथुन नहीं करता। यदि मनुष्य होकर भी इस नियम की अवहेलना करता है, तो इससे अधिक पतन की बात और क्या होगी? स्वदार सन्तोष-व्रत का पूर्णतया पालन तभी समझना चाहिये, जब परस्त्री का त्यागने के साथ ही, स्व स्त्री के सेवन में भी अनियमितता न की जावे यानी सन्तोष से काम लिया जाय।

स्वदार सन्तोषव्रत की विशेषता तब है, जब मौजूदा पत्नी के सिवाय त्याग कर दिया जाय, जैसा कि आनन्द श्रावक ने, अपनी शिवानन्दा स्त्री का आगार रखा था।

एक पत्नी व्रत। व्रत धारण करने के पश्चात और विवाह करने की इच्छा न रखी जावे। पुरुषों ने, अपने प्रभुत्व से बहुविवाह या एक स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह करने का अधिकार बढ़ा लिया है और वर्तमान समय में एक पत्नी के मरने बाद दूसरी पत्नी करने यानि दूसरा तीसरा विवाह करने की प्रथा चल पड़ी है इससे ऐसा करना कठिन जान पड़ता है, अन्यथा प्राकृतिक रचना पर ध्यान देने एवं न्याय दृष्टि से विचारने पर, यह बात स्पष्ट है, कि इस विषय में पुरुष को, स्त्री से अधिक अधिकार नहीं है। चरिता

नुवाद के सूत्रों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं दिखाई पड़ता, जो श्रावक की विद्यमान पत्नी मरने पर या विद्यमान कायम रहते हुए भी सकारण दूसरा विवाह किया हो अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियें एक पतिव्रत का पालन करती हैं, उसी प्रकार पुरुषों को भी, एक-पत्नी व्रत का पालन करना उचित है और जिस प्रकार, विधवा होने पर भी स्त्रियें, दूसरे पुरुष के साथ विवाह नहीं करतीं, उसी प्रकार पुरुष को भी विधुर होने पर, दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना उचित नहीं, किन्तु विधवाओं की तरह, विधुर को भी ब्रह्मचर्य पालना चाहिये।

स्वपतिसन्तोष व्रत ।

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम् ।

चाणक्य नीति ।

'कोयल का रूप उसका स्वर है और स्त्री का रूप, उसका पति व्रत है।'

सर्वविरतिब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार करने में असमर्थ ऐसी विवाह करने वाली स्त्रियों को विवाह करने के पश्चात् भी, स्वपति सन्तोष व्रत स्वीकार एवं पालन करना चाहिए। स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार करने वाली स्त्रियें, देशविरति ब्रह्मचारिणी कहलाती हैं और व्यवहार तथा

प्रस्तावना ।

अन्य ग्रन्थकारों की दृष्टि में, ऐसी स्त्रियें ब्रह्मचारिणी सतियें भी कहाती हैं। जैसे—

या नारी पतिभक्तास्यात्सा सदा ब्रह्मचारिणी।

स्मृति।

जो स्त्री पतिभक्ता है—दूसरे पुरुष से अनुराग नहीं रखती—वह सदा ब्रह्मचारिणी कहाती है।

स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार एवं पालन करने से, स्त्रियों को वे ही लाभ होते हैं, जो लाभ पुरुषों को स्वदारसन्तोष व्रत से होते हैं। संसारावस्था में स्त्रियों के लिए, स्वपति

लाभ।

सन्तोष व्रत के समान और कोई कार्य, इस लोक तथा परलोक में हितसाधक नहीं है। दूसरे कार्य किसी एक ही लोक का हित साधने में समर्थ हो सकते हैं, लेकिन स्वपति सन्तोषव्रत से दोनों ही लोक सुधरते हैं। अन्य ग्रन्थकार भी कहते हैं—

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देह संयता।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भि साध्वीतिचोच्यते॥

मनुस्मृति।

'जो स्त्री मन, वाणी तथा शरीर से व्यभिचार नहीं करती है, पर पुरुष को नहीं चाहती है, वह इस लोक में सती साध्वी कही जाती है और मरने पर स्वर्ग और परम्परा से मोक्ष को प्राप्त होती है।'

स्वपतिसन्तोषव्रत स्वीकार करने वाली स्त्री के लिए, इस लोक तथा परलोक में, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। पतिव्रता स्त्री की सेवा-सहायता के लिए देवता, भी तत्पर रहा करते हैं। शास्त्रों में, सीता, द्रौपदी और सुभद्रा आदि सतियों का वर्णन, उनके सतीत्व के कारण ही आया है, एवं अग्नि का शीतल होना भी उनके पतिव्रत का ही प्रभाव है। इसके विपरीत जो स्त्रियें व्यभिचारिणी हैं, उनके लिए, इस लोक और परलोक में वे ही हानियें हैं, जो हानियें व्यभिचारी पुरुष के लिए बताई गई हैं। अन्य ग्रन्थकारों ने भी कहा है—

व्यभिचार-निन्दा।

> व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
> शृगाल योनिंचाप्नोति पाप रोगैश्च पीड्यते॥
>
> मनुस्मृति।

'पर पुरुष के साथ रमण करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री इस लोक में निन्दा को प्राप्त होती है, पाप तथा रोगों से पीड़ित होती है और मर कर स्यारी की योनि पाती है। यानी नर्क तियक गति को प्राप्त होती है।'

स्वपति सन्तोषव्रत पालन करने के लिए, स्त्रियों को भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है, जो नियम स्वदार सन्तोष व्रत लेने वाले पुरुषों के लिए, बताये गये हैं। बल्कि, धर्म सहायिका होने के कारण स्त्रियों पर, अपने पति का पत्नी व्रत पर स्थिर रखने एवं नियमों का पालन कराने की जिम्मेदारी और आ पड़ती है। स्वपति सन्तोष-व्रत

नियम।

की आराधिका स्त्री, ऐसे कोई कार्य नहीं करती, जिनके करने से स्वयं या उसके पति के व्रत में दोष लगता हो, या व्रत से सम्बन्ध रखने वाले नियम भंग होते हों।

...रक्षा के उपाय।

देशविरति ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, उन नियमों को आदर्श मान कर यथासम्भव उनका अनुसरण करना उचित है, जो नियम सर्वविरतिब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए बताये गये हैं। यह बात दूसरी है, कि देशविरति ...ह्मचर्य व्रत स्वीकारने वाले लोग गृहस्थ होते हैं, इसलिए समुचित ...प में उन नियमों का पालन न कर सकें, लेकिन आंशिक रूप में ... अवश्य पालन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए सर्वविरति ...ह्मचारी की तरह देशविरतिब्रह्मचारी, उस मकान में, जिसमें स्त्री, ... रहते हों (न रहने का) नियम नहीं पाल सकता, लेकिन स्त्री ...थ अलग अलग कमरों में रहने या एक शय्या पर शयन न करने ... नियम का पालन कर सकते हैं। इसी प्रकार, देशविरति ब्रह्मचारी ...दि स्त्री मात्र को न देखने—उनसे बातचीत हँसी मजाक आदि न ...ने—का नियम नहीं पाल सकता, तो पर स्त्री के लिए तो इस ...यम को पाल ही सकता है। सारांश यह, कि देशविरति ब्रह्मचारी ..., सर्वथा नहीं, तो आंशिक रूप में जितने भी पाल सकें, उन ...यमों का पालन करना उचित है, जो नियम, सर्वविरति ब्रह्मचारी ... ब्रह्मचारिणी के लिए बताये गये हैं।

---

(१०)

देश-विरति ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचार

शास्त्र में, प्रत्येक व्रत की चार मर्यादा बतलाई गई
अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। व्रत को उल्लं
व्याख्या। करने का सङ्कल्प करना अतिक्रम है। इ
सङ्कल्प को पूरा करने के लिए सामग्री जुटा
व्यतिक्रम है। व्रत को उल्लंघन करने के सङ्कल्प को कार्यरूप में प
णत करने के लिए तैयार हो जाना, अतिचार है और व्रत
उल्लंघन करने के सङ्कल्प को पूरा कर डालना यानी व्रत को तो
डालना, अनाचार है।

यद्यपि, व्रत में दूषण तो अतिक्रम और व्यतिक्रम से
लगता है, लेकिन मानव-स्वभाव को दृष्टि में रख कर, व्यवहार
अतिक्रम और व्यतिक्रम से व्रत दूषित नहीं माना जाता, किन्तु
अतिचार से व्रत दूषित माना जाता है और अनाचार से तो, व्रत
नष्ट ही हो जाता है। इसलिए प्रत्येक व्रत के अतिचारों को जानकर
उनसे बचना आवश्यक है।

देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत के, भगवान महावीर ने पाँच अति-
चार बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—

सदार संतोसीए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा इत्तरिय परिग्गहिया गमण, अपरिग्गहिया गमणे, अनंगक्रीडा, पर विवाह करणे, कामभोग तिव्वाभिलासे।

स्वदार सन्तोष व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य हैं, लेकिन आचरण योग्य नहीं हैं। वे अतिचार ये हैं—इत्वरिक परिगृहीता गमन, अपरिगृहीता गमन, अनंग क्रीड़ा, पर विवाह करण, काम भोग में तीव्र अभिलाषा।[१]

पहला अतिचार।

देशविरति ब्रह्मचर्यव्रत का पहला अतिचार इत्वरिक परिगृहीता गमन है। बहुत से लोग, स्वदारसन्तोष व्रत लेकर भी यह गुंजाइश निकालते हैं, कि हमने स्वदार का आगार रखा है, इसलिए किसी स्त्री को कुछ समय के लिए रुपये पैसे देकर—भाड़े देकर—अपनी बना ली जाय और उसके साथ भोग का व्यवहार किया जावे, तो इससे स्वदारसन्तोष-व्रत में बाधा नहीं आता। यद्यपि, स्वदार सन्तोषव्रत में, केवल उसी स्त्री का जिसके साथ, देश और समाज प्रचलित रीति से विवाह हुई स्त्री का आगार रहता है, फिर भी, कई लोग उक्त प्रकार गुंजाइश निकालने लगते हैं। लेकिन इस प्रकार का गुंजाइश निकाल कर, जो नहीं है, उस स्त्री को, थोड़े समय के लिए अपनी बनाकर, उसके साथ मैथुन करने के लिए तैयार होना अतिचार है, और मैथुन करना, जब तक अतिचार के रूप में [illegible] अतिचार [illegible]

लगता है—व्रत नष्ट नहीं होता, लेकिन इस प्रकार का कार्य अना चार के रूप में होने पर यानी मैथुन किया रूप में हो जाने पर व्रत नष्ट हो जाता है। इस अतिचार का दूसरा अर्थ यह भी है कि अपनी स्त्री भी जो अल्पवयस्का है, भोग योग्य नहीं है, ऐसी स्त्री से सम्भोग करना अनाचार तो नहीं, किन्तु अतिचार अवश्य है। कारण ऐसा कार्य बलात् किया जाता है, बाल विवाह से ऐसा होता है।

दूसरा अतिचार

दूसरा अतिचार अपरिगृहीता-गमन है। परदार से निवर्तने वाले बहुत से लोग, परदार त्याग का यह अर्थ लगाने लगते हैं कि जो स्त्री दूसरे की है, जिसका स्वामी कोई दूसरा पुरुष है, उस स्त्री से मैथुन करने का हमने त्याग लिया है, लेकिन जो स्त्री किसी दूसरे की है ही नहीं, जिसका कोई नियत पति ही नहीं है—जैसे वेश्या—या जिसका विवाह ही नहीं हुआ है या विवाह तो हुआ है, लेकिन अब वह पतिविहीन है—जैसे विधवा या पति परित्यक्ता—ऐसी स्त्री के साथ मैथुन करने से लिये हुए त्याग में, कोई दूषण नहीं आता। यद्यपि, पर स्त्री त्याग में उन सभी स्त्रियों का त्याग हो जाता है, जो अपनी नहीं हैं, फिर भी कई लोग इस प्रकार गुञ्जाइश निकालने लगते हैं। लेकिन इस प्रकार की गुञ्जाइश निकाल कर, जो स्त्री अपनी नहीं है, उस स्त्री से मैथुन करने के लिए तैयार हो जाना, त्याग की प्रतिज्ञा को दूषित करना है। अतिचार की सीमा तक—यानी मैथुन करने

तैयारी तक—तो त्याग की प्रतिज्ञा दूषित ही होती है, लेकिन अतिचार की सीमा का उल्लंघन होते ही—अनाचार होने पर—लिया हुआ व्रत नष्ट हो जाता है। इस अतिचार का दूसरा अर्थ यह है कि जिस कन्या के साथ सम्बन्ध तो हो गया है, परन्तु यथा साध्य विवाह नहीं हुआ है, ऐसी स्त्री (कन्या) के साथ सम्भोग करना भी अतिचार है, क्योंकि अपनी होने हुए भी अपरिगृहीता है।

कई लोग कहते हैं, कि वेश्या तो किसी की स्त्री नहीं है, इस कारण वेश्या सम्भोग से व्रत नष्ट नहीं होता। ऐसा कहने और समझने वाले लोग, लिये हुए व्रत और त्याग के रहस्य से ही अनभिज्ञ हैं। स्वदार

वेश्या गमन से हानि

सन्तोषव्रत और परदार विरमण्ण की भोग की लालसा को सीमित करके, शनै शनै उसे कम करने के लिए हैं। लेकिन वेश्या सम्भोग, पर-स्त्री सम्भोग से भी अधिक हानिप्रद है। वेश्या-सम्भोग से, दुर्विषय-लालसा में ऐसी भयङ्कर वृद्धि होती है, कि जिसका वर्णन करना, शक्ति से परे की बात है। वेश्या गामी पुरुष दुर्विषय-लालसा से वृद्धि होने के कारण वेश्या के पीछे अपना सब कुछ खो बैठता है। वेश्या के पीछे, बड़े-बड़े धनिकों को—अपना धन-वैभव गौरव—भीख मांगनी पड़ी है। बड़े-बड़े परिवार वाले, वेश्या के कारण निःसहाय हो जाते हैं। बड़े बड़े बलवान, वेश्या संग से बलहीन हो जाते हैं। इतना होने पर भी, जिस वेश्या के पीछे यह सब होता है, वह वेश्या, किसी भी पुरुष की नहीं होती। वेश्या गामी पुरुष, इस

लोक में निन्दित और परलोक में दण्डित होता है। बड़े अनुभव के पश्चात् भर्तृहरि कहते हैं—

> वेश्या सौं मदनज्वाला रूपेन्धन समेधिता ।
> कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥

'वेश्या, कामाग्नि की ज्वाला होती है जो रूप ईन्धन से सजी रहती है; कामी लोग, इस रूप ईन्धन से सजी हुई वेश्या नामकी कामाग्नि की ज्वाला में अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं।'

तात्पर्य यह कि वेश्या गमन भयंकर पाप है। वेश्या-गामी पुरुष का अन्तःकरण इतना कलुषित हो जाता है, कि वह अपने कुटुम्ब की स्त्रियों पर कुदृष्टि डालने में, तथा मनुष्य हत्या एवं आत्म हत्या करने में भी नहीं हिचकिचाता।

तीसरा अतिचार।

तीसरा अतिचार अनङ्गक्रीड़ा है। काम सेवन के लिए प्राकृतिक जो अङ्ग हैं, उनके सिवा शेष सब अँग, काम सेवन के लिए अनङ्ग हैं, जो अँग काम सेवन के लिए अनङ्ग हैं, उनसे काम क्रीड़ा करना, अनङ्ग क्रीड़ा कहलाता है। जैसे गुदा मैथुन, हस्त मैथुन, मुख मैथुन, कर्ण मैथुन, कुचमर्दन, चुम्बन आदि। इन सब मैथुनों की विशेष व्याख्या अश्लीलता से भरी हुई है, इसलिए विशेष व्याख्या न करके इतना ही कहा जाता है कि स्व स्त्री से भी ऐसा मैथुन करने से व्रत में दूषण लगता है। इसलिए व्रतधारी को इस अतिचार से बचना चाहिये।

चौथा अतिचार, पर विवाह-करण है। आनन्द-श्रावक की तरह अपनी स्त्री का नाम लेकर स्वदार-सन्तोष व्रत स्वीकार करने वाला, केवल अपनी उसी स्त्री पर सन्तोष करने की प्रतिज्ञा करता है जो प्रतिज्ञा करते समय मौजूद है और जिसके साथ देश और समाज प्रचलित रीति से, विवाह हो चुका है। ऐसा होने पर भी कई लोग यह गुंजाइश निकालने लगते हैं, कि हमने स्व-स्त्री सन्तोष व्रत लिया है। इसलिए यदि किसी अविवाहित स्त्री से विवाह करके उसे अपनी ही बना लें, तो कोई हर्ज नहीं। ऐसा करने से हमारे व्रत में दूषण न होगा। वास्तव में ऐसा करना प्रतिज्ञा विरुद्ध है। जब तक यह कार्य अतिचार की सीमा तक है, तब तक तो व्रत में दूषण ही लगता है, लेकिन अनाचार के रूप में होने पर व्रत नष्ट हो जाता है। यह बात दूसरी है कि कोई अपनी इच्छानुसार व्रत ले, लेकिन आनन्द की तरह स्वदार-सन्तोष व्रत लेने पर पुन विवाह करने का अधिकार नहीं रहता। इस व्याख्या के विषय में आचार्य हरिभद्र सूरिजी कृत 'धर्मबिन्दु' प्रमाण है।

इस अतिचार का एक अर्थ, दूसरे का विवाह करना-कराना भी है। बहुत से लोग धर्म या पुण्य समझ कर, दूसरे लोगों का विवाह करने-कराने लगते हैं, लेकिन व्रतधारी के लिए, ऐसा करना निषिद्ध है। ऐसा करने से उसका व्रत दूषित होता है।

पाँचवाँ अतिचार, काम भोग की तीव्र अभिलाषा है। स्वदार सन्तोष व्रत, काम भोग की अभिलाषा को, मन्द करने के

पांचवां अतिचार।

लिए ही लिया जाता है और इसीलिए इसके नाम में 'सन्तोष' शब्द लगा हुआ है। ऐसा होते हुए भी कई लोग, काम भोग की अभिलाषा को तीव्र करने की चेष्टा करते हैं, यानी वाजीकरण आदि औषधि का सेवन करते हैं, या कामोद्दीपन की चेष्टा करते हैं और समझते हैं, कि इसमें हमारे व्रत को कोई हानि नहीं पहुंचती। लेकिन ऐसा करने से स्वदार के सेवन में सन्तोष नहीं रहता, किन्तु असन्तोष बढ़ जाता है। इस लिए व्रतधारी को, काम भोग की अभिलाषा तीव्र करने का उपाय न करना चाहिए। ऐसा करने से व्रत में अतिचार होता है और व्रत दूषित हो जाता है।

इन अतिचारों को जान कर इनसे बचना, देशविरति ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक है।*



*इन अतिचारों का अर्थ करने में भिन्न २ आचार्यों का भिन्न २ मत है। कोशिश करने पर भी हम ऐसा सुअवसर प्राप्त न कर सके कि चर्चा द्वारा सब आचार्य इस विषय में एक मत हो जाते। अतः व्याख्याता महोदय की टीकानुमोदित धारणानुसार यह अर्थ दिया गया है। यदि भविष्य में कोई सर्वानुमोदित या उचित अर्थ प्राप्त हुआ, तो दूसरे संस्करण में परिशोधन कर दिया जावेगा।

—सम्पादक।



उपसंहार ।



पूर्ण ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल शारीरिक संयम ही नहीं है, किन्तु सभी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार और मन, वचन, काय करके काम भाव से सर्वथा मुक्ति है। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, असम्भव या अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु सम्भव और स्वाभाविक है। यद्यपि पूर्ण ब्रह्मचर्य का सर्वांश में पालन तो गृहत्यागी साधु ही कर सकते हैं, लेकिन आँशिक-रूप में गृहस्थ भी पाल सकता है और शरीर के विकास के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक भी है। इसके लिए दृढ़ता की आवश्यकता अवश्य है। जिसमें दृढ़ता नहीं है, जो इन्द्रियों के किंचित प्रलोभ के सामने ही झुक जाता है वह ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि, इन्द्रियों के सामने थोड़ा भी झुक जाने पर, इन्द्रियों का बल बढ़ता जाता है, वे अपना आधिपत्य जमाती जाती हैं और फिर ब्रह्मचर्य से ही दूर नहीं फेंक देतीं, किन्तु दुराचार के गड्ढे में ही डाल देती हैं।

जिस प्रकार ब्रह्मचर्य स्वाभाविक है, उसी प्रकार दुर्विषय भोग अस्वाभाविक भी है, जिसकी इच्छा होना प्राय बुरे तौर पर किये गये फल है। गाँधीजी के शब्दों में,

और दूसरे सम्बन्धी अबोध बच्चों को यह सिखलाना धार्मिक-कर्त्तव्य सा मान बैठते हैं, कि इतनी उम्र होने पर तुम्हारा विवाह होगा। बच्चे के भोजन और कपड़े भी, बच्चे को उत्तेजित करते हैं। बच्चों को सैंकड़ों तरह की गर्म और उत्तेजक चीजें खाने को देते हैं, अपने अन्ध प्रेम में, उनकी शक्ति की कोई परवाह नहीं करते। इस प्रकार माता पिता स्वयं विकारों के सागर में डूब कर, अपने लड़कों के लिए बे-लगाम स्वच्छन्दता के आदर्श बन जाते हैं।' गाँधीजी का यह कथन, अधिकांश में ठीक है और इस प्रकार का पालन पोषण ही विषयेच्छा उत्पन्न करने का कारण है।

दुर्विषय भोग, उसी प्रकार अस्वाभाविक और ब्रह्मचर्य उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार असत्य, अस्वाभाविक और सत्य, स्वाभाविक है। यदि किसी बालक के सामने, असत्य का वातावरण न आने दिया जावे, तो वह बालक 'असत्य' किसे कहते हैं, यह भी न जानेगा, न असत्य का उपयोग ही करेगा। ठीक इसी प्रकार, यदि किसी बालक के सामने दुर्विषय भोग सम्बन्धी कोई बात न की जावे, काम भोग का कोई आचरण न किया जावे, तो सम्भव उसमें इस प्रकार की दुर्विषयेच्छा उत्पन्न ही न होगी, जैसी कि इससे विपरीतावस्था में उत्पन्न हो सकती है। बच्चों के सामने, किसी कुकृत्य को यह समझ कर करना, कि ये बच्चे क्या जानें, भूल है। बच्चों पर, प्रत्येक अच्छी या बुरी बात का स्थायी प्रभाव पड़ता है। उनके हृदयरूपी कोरे चित्रपट पर, प्रत्येक बात

इस प्रकार अङ्कित हो जाती है, जो मिटने से मिट नहीं सकती। वास्तव में, यह समझना ही भूल है, कि हमारे किसी कार्य को दूसरा नहीं देखता या हमारे काय का अच्छा-बुरा प्रभाव, दूसरे पर नहीं पड़ सकता। गुप्त से गुप्त कार्य और विचारों का प्रभाव भी, इतना गहरा और इतनी दूर तक पड़ता है, कि जिसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

यद्यपि, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक सभी लोग नहीं पहुंच सकते, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के सामने इस आदर्श का होना आवश्यक है। जिसकी मानसिक आँखों के सामने यह आदर्श नहीं है, वह पतित से भी पतित हो जाता है। वह दुर्विषय-वासना की लगाम को, काबू में नहीं रख सकता, किन्तु उसका गुलाम हो जाता है।

पूर्ण ब्रह्मचर्य से नीचा आदर्श, एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत है। जो लोग, पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श की ओर, सहसा गति करने में अपने आप को असमर्थ देखते हैं—मार्ग में पतित होने का भय है—उनके लिए, यह दूसरा नीचे से नीचा आदर्श है। यह आदर्श, कमजोर लोगों के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुंचने के मार्ग में—एक विश्रान्तिस्थल है। इससे नीचा कोई आदर्श नहीं है, न इससे नीची अवस्था वाला, ब्रह्मचर्य के मार्ग का पथिक ही माना जा सकता है।

विवाह, दुर्विषयेच्छा मिटाने को क्या है, न को दुर्विषयेच्छा की तृप्ति का साधन। दुर्विषयेच्छा की तृप्ति तो कभी हो ही नहीं

सकती। उसकी तृप्ति के लिए, जैसे जैसे उपाय किया जावेगा, वह वैसे ही वैसे बढ़ती जावेगी। दुर्विषयेच्छा-पूर्ति की प्रत्येक चेष्टा, दुर्विषयों का अधिकाधिक गुलाम बनाती है।

विशेषतः विवाह करने का कारण, सन्तानोत्पत्ति की अभिलाषा है, अतः इस अभिलाषा के पूरी हो जाने पर, दुर्विषय भोग का त्याग कर देना ही उचित है। इसी प्रकार बढ़ती हुई सन्तान को रोकने के लिए भी, मैथुन का ही त्याग करना चाहिये, कृत्रिम उपायों का अवलम्बन लेना ठीक नहीं। सन्तति निरोध के कृत्रिम उपाय, अनीति और पापाचार को बढ़ाने वाले तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानि प्रद हैं।

इसीरीति ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिए, स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की सहायता करना, उचित एवं आवश्यक है। यदि किसी समय पुरुष में व्रत या उसकी मर्यादा भंग करने की बुरी इच्छा हो, तो पत्नी का कर्त्तव्य है, कि वह प्रत्येक सम्भव उपाय से, अपने पति को ऐसा करने से बचावे। इसी प्रकार, यदि किसी समय स्त्री में ऐसी कुभावना हो, तो पति का भी यही कर्त्तव्य है। इस प्रकार एक दूसरे की सहायता एवं एक दूसरे को सावधान करते रहने से, पति पत्नी दोनों का व्रत निर्मल पलेगा और कभी न कभी पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श तक पहुंच कर अपना कल्याण कर सकेंगे।

